वर्ष २ अंक २४
विक्रम संवत् २०७७ भाद्रपद
सितम्बर २०२०

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित

14 सितम्बर
हिंदी दिवस

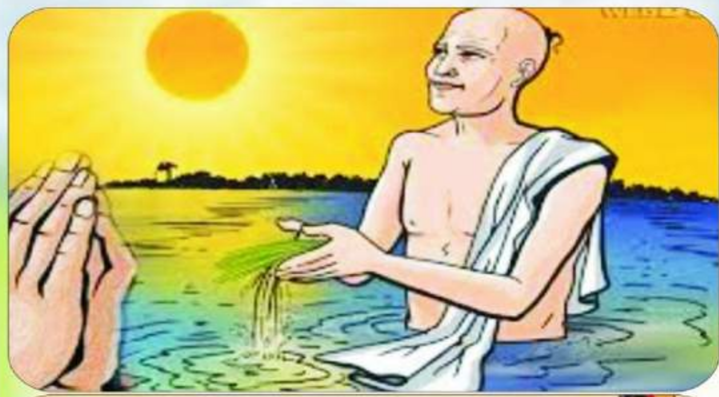

जीवित माता-पिता एवं बुजर्गों की सेवा करना ही श्राध्द है

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद्

आ ले प

यत्र विश्वं भवति एकनीडम्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

सितम्बर 2020

वर्ष—२ अंक—२४,
विक्रम संवत् २०७७
दयानन्दाब्द— १९६
कलि संवत् — ५१२१
सृष्टि संवत् —१,९६,०८,५३,१२१

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(८७३६६७६६३०,
६६६३६७०६४०)

❖

आकल्पन
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
महर्षि दयानन्द आश्रम
ग्राम सिताबाडी, केलवाड़ा
जिला—बारां (राजस्थान)—३२५२१६

अनुक्रम

विषय

१. नृसिंह नाद (सम्पादकीय)
२. समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याघ्र
३. Entry to Grihastha Ashrama
४. कभी न हारे हैं जीवन में (कविता)
५. Second Ashrama : Grihastha Ashrama
६. हिंदी गौरव गान (गीत)
७. मन सहित पांच इन्द्रियां
८. श्राद्ध मीमांसा
९. नवयुवक राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम पत्र
१०. मैकाले का सांया (कविता)
११. हिन्दी को भी चाहिए संक्रमण से मुक्ति
१२. हिंदी – गरिमा (कविता)
१३. डा. सत्यप्रकाश स्वामी
१४. महान् दार्शनिक पण्डित गंगा प्रसाद उपाध्याय
१५. मनुष्य मांसाहारी या शाकाहारी ?
१६ सुनो द्रोपदी शस्त्र उठालो (कविता)
१७ बेटियों का करें सम्मान (कविता)

ईमेल — aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट — https://aryalekhakparishad.com/
फेसबुक — आर्य लेखक परिषद्

Digital

सम्पादकीय

नृसिंह नाद

प्यारे देशवासियो! सावधान

जब खजाना लुट गया, फिर होश में आए तो क्या।
वक्त खोकर दस्ते हसरत मल के पछताए तो क्या।
कुछ अमीरों और रईसों ने समझ रक्खा है ये।
हम रहें जिन्दा बला से कौम मिट जाए तो क्या।
लीडरों को लीडरी की फिक्र दामनगीर है
दरबदर जनता दुखी हो ठोकरें खाए तो क्या।

आज विश्व के समस्त राजनीतिबाज और सरकारें चन्द पूंजीपतियों के क्रीत दास हैं। ये लोग जो भी करेंगे अपने मालिकों कार्पोरेट्स के भले और फायदे के लिए ही करेंगे। इनसे आमजन के हित की आशा करना रेत से तेल निकालने की बात होगी। उद्योगपतियों को उत्पादन के साधनों पर कब्जा करवाना, सस्ते से सस्ते मजदूर उपलब्ध करवाना, उनकी लूट और शोषण को निरापद बनाना यही इनकी जिम्मेदारी है, जो इनके मालिकों ने इन्हें सौंप रखी है। बदले में इन्हें भारी कमीशन, एशो–आराम के साधन और चुनावी खर्च दिया जाता है। दूसरी ओर सरकारी भत्ता, लाखों का वेतन और पेंशन अलग से मिलते हैं।

सरकारें देश की सुरक्षा एजेंसियों को नागरिकों की सुरक्षा से हटा कर पूंजीपतियों की सुरक्षा में लगा देती हैं। प्रजा को प्रताड़ित करवाती हैं। फिर उनकी मदद करने का नाटक करके अहसान थोपती हैं, ऋण देकर जेल से छुड़ाने का ढोंग कर उन्हें सदा के लिए गुलाम बनने पर विवश कर देती हैं। उनके बेटों से अपनी बेगार करवाती हैं और उनकी बहनों बेटियों और बहुओं को अपनी हवस का साधन बनाती हैं। गरीब को कहीं न्याय नहीं मिलता। उनके समक्ष दो ही मार्ग होते हैं, या तो वह गुलामी के जुए को गर्दन पर रखे हुए अपमान के घूंट पी–पी और अभावों का स्वागत करते हुए जीता रहे या फिर बेमौत मरने के लिए तैयार रहे।

सत्ताधीशों के अन्याय, अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने वालों, न्याय या हक की बात करने वालों को झूठे मुकदमों में फंसा कर, प्रताड़ित करवाकर जेल में बंद कर दिया जाता है। सत्ताधीशों का अहंकार उन्हें नैतिक पतन की पराकाष्ठा पर पहुंचा देता। आमजन तो भय के मारे जबान ही नहीं खोलता और देश का बौद्धिक वर्ग सत्ताधीशों की खुशामद और चापलूसी करने में लग जाता है। उन्हें महापुरुष, ईश्वर का अवतार, उदार, चरित्रवान, गरीबों का हमदर्द, अद्वितीय बुद्धिमान् और नीतिज्ञ आदि बताने वाले लेख, कविता और नाटक रचने लगता है। इस तरह वह अपनी रोजी–रोटी का जुगाड करने में लगा रहता है। रक्षक भक्षक बन जाते हैं और न्यायालय अन्याय केन्द्र बन जाते हैं। सब तरफ ठकुरसुहाती चल, पड़ती है।

कृत्रिम अभाव का सृजन, स्वत्वहरण और शोषण करना पूंजीवाद की मुख्य नीति है। इसके लिए ये लोग तरह–तरह के हथकण्डे अपनाते हैं। कभी धर्म की आड़ लेकर, देवी देवता की आड़ लेकर, नए–नए चमत्कार गढ़ कर आमजन में भय और कायरता का संचार करके शोषण करते हैं। कभी आलसी, निकम्मे कामचोर लोगों को गुरु और सन्त बनाकर मुफ्त का माल खिलाकर उनसे अपनी विरुदावली का बखान करवाते हैं। देश का श्रमिक वर्ग जी तोड़ मेहनत के बाद भी दो जून की रोटी नहीं जुटा पाता, दूसरी ओर तथाकथित साधू संत और गुरु चक माल खाकर पचाने के लिए चूर्ण खाते हैं। देश की नई पीढ़ी को नशेड़ी बना कर बर्बाद करते हैं और चेलियां पटाकर व्यभिचार को बढ़ाते हैं।

पूंजीवाद एक विकृत जीवन दर्शन है। यह एक ऐसी प्रवृत्ति है जो मनुष्य को स्वार्थी और संवेदनहीन बनाती है। धन, सम्पत्ति और मुनाफे को जीवन से भी महत्वपूर्ण मानती है। पूंजीवादी मनुष्य मुनाफे के लिए किसी भी बहुमूल्य जीवन को नष्ट करने में संकोच नहीं करता। वह धन का उपयोग लोगों की सुख शांति के लिए नहीं करता। उसका धर्म केवल मुनाफा होता है।

वह निर्दय और क्रूर होता है। उसे खुश करने के लिए शासक प्रशासक प्रजा के साथ क्रूरता और निर्दयता की हद कर देते हैं। अन्ततः जब ऐसी स्थिति

बना दी जाए कि –

सहते–सहते अनय जहां मर रहा मनुज का मन हो।
समझ कापुरुष अपने को धिक्कार रहा जन–जन हो।।

तब प्रजा में एक सामूहिक घृणा का उदय होता है जो सत्ताधीशों के अहंकार से टकराने लगती है। शनैः–शनैः जनमानस में विद्रोह की सुगबुगाहट प्रतीत होने लगती है। सत्ताधीशों को भी इसके संकेत मिलने लगते हैं परन्तु –

पाकर भी संकेत सजग हों किन्तु न सत्ताधारी।
दुर्मति और अनल में दें आहुतियां बारी–बारी।।
कभी नए शोषण से कभी उपेक्षा कभी दमन से।
अपमानों से कभी, कभी शरवेधक व्यंगवचन से।।

तब क्या होता है? कविवर दिनकर के शब्दों में –

सहज ही चाहता कोई नहीं लड़ना किसी से।
किसी को मारना अथवा स्वयं मरना किसी से।
नहीं दुश्शान्ति को भी तोड़ना नर चाहता है।
जहां तक हो सके निज शान्ति प्रेम निबाहता है।

मगर यह शान्तिप्रियता रोकती केवल मनुज को।
नहीं वह रोक पाती है दुराचारी दनुज को।
दनुज कब शिष्ट मानव को कभी पहचानता है।
विनय को नीति कायर की सदा वह मानता है।

समय ज्यों बीतता त्यों–त्यों अवस्था घोर होती।
अनय की श्रृंखला बढ़कर कराल कठोर होती।
किसी दिन तब महाविस्फोट कोई फूटता है।
मनुज ले जान हाथों में दनुज पर टूटता है।।

दबे हुए आवेग एक दिन फूट पड़ते हैं और लोगों के संयम का बान्ध टूट जाता है और वे काल बनकर अन्यायी, अत्याचारी पर टूट पड़ते हैं। यद्यपि शासकवर्ग हिरण्यकश्यप की भांति अपनी रक्षा उत्तम, आधुनिक अमोघ अस्त्र–शस्त्र और उपाय जुटाकर स्वयं को अपराजेय, अमर और सुरक्षित समझता हुआ करता रहता है।

परन्तु एक दिन कोई नृसिंह जनता में से प्रकट हो ही जाता है और शासकों की वासनाग्नि से दहकते खम्भे को फाड़कर प्रजा के सुख चैन रूप प्रह्लाद को मुक्त करा ही लेता है। इतिहास तो यही कहता है। काश दुनिया के तानाशाह उस नृसिंहनाद से कुछ सीख पाते।

अन्यायी अत्याचारी के लिए वेद में कहा है –

अद्य जीवानि मा श्वः

– ✍ वेदप्रिय शास्त्री

आर्ष क्रान्ति के सुधी पाठकों से

समाज सुधार, संस्कृति उन्नयन और धर्म जिज्ञासा क्षेत्र की अनेक पत्रिकाएं सोशल मीडिया पर आपने देखी और पढ़ी होगी । आर्ष क्रांति पत्रिका का तेवर और स्वरूप कैसा है इसे जानने की जिज्ञासा आपके मन में पैदा होती है, तो यह समझना चाहिए आप एक विचारवान और जिज्ञासु किस्म के बुद्धिमान व्यक्ति हैं । हमें आप जैसे क्रांतिकारी और प्रगति गामी विचारवान व्यक्ति का साथ चाहिए। फिर देर किस बात की । नीचे लिंक पर जाइए और फार्म भर कर हमें भेज दीजिए। अब आप जुड़ गए हैं ऐसी संस्था और पत्रिका से जो एक आदर्श समाज, उन्नतशील संस्कृति और मानव मूल्यों के धर्म की स्थापना के लिए कृतसंकल्प है । आप एक शुभ संकल्पवान व्यक्ति हैं और यह पत्रिका भी शुभ संकल्पों को मूर्त रूप देना चाहती है, एक आदर्श समाज निर्माण में हमारी संस्था और पत्रिका से जुड़कर आप अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं । आपका हमें इंतजार रहेगा।

इस लिंक पर क्लिक करके यह फार्म अवश्य भरें

http://bit.ly/aarshkranti

नोट – फॉर्म को भरने के लिए अपने मोबाइल/ कम्प्यूटर में इन्टरनेट अवश्य चालू रखे

समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याघ्र

– ✍ अखिलेश आर्येन्दु

युद्ध चल रहे हैं, बाहर भी और भीतर भी। युद्ध कब तक चलेंगे, किसी को नहीं मालूम। इन युद्धों से कई बार मानव सभ्यता और मानवता प्रभावित हुई है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है–

'समर शेष है जन गंगा को खुलकर लहराने दो।
शिखरों को डूबने और मुकुटों को बह जाने दो।
पथरीली ऊंची जमीन है? तो उसको तोड़ेंगे।
समतल पीटे बिना समर की भूमि नहीं छोड़ेंगे।'

मानव स्वयं से लड़ता है और बाहर लड़ता है। अंदर की अनेक लड़ाइयां लड़कर कभी जीतता है तो कभी परास्त होता है। बाहर जितनी लड़ाइयां चल रहीं हैं उनमें वह कभी जीता है तो कभी हारता है। अनन्तकाल से युद्ध निरंतर चल रहे हैं। कब तक चलेंगे कोई नहीं जनता। रामधारी सिंह दिनकर ने आगे लिखा है –

समर शेष है चलो ज्योतियों के बरसाते तीर।
खण्ड–खण्ड हो गिरे विषमता की काली जंजीर।

पूंजीवाद और बाजारवाद विश्व पर शासन कर रहे हैं। विषमता बढ़ रही है। भूमण्डलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण विकास और प्रगति के आधार बनाए जा चुके हैं। तथाकथित विकास के इन आधारों ने बिषमता को तीव्रता और स्थायित्व किया है। इन बाजारवादी शक्तियों पर निरंतर तीर बरसाने की आवश्यकता है। लेकिन बरसाएगा कौन?

ब्रह्माण्ड में मानव सबसे बुद्धिमान् प्राणी है। इसके बाद भी वह सबसे अधिक लाचार और असहाय है। वह शक्तिशाली है। सबको जीतने की इच्छा रखता है, लेकिन जीत नहीं पाता। बार–बार प्रयास करता है, लेकिन उस प्रयास में विफल होता है। क्योंकि सबको नहीं जीता जा सकता। परन्तु स्वयं को जीता जा सकता है। और जो स्वयं को जीत लेता है, वह ही सच्चे अर्थों में विजेता है। विचारणीय बात है कि क्या हम विजेता बन पाएं हैं ? विचारणीय बात यह भी है कि क्या हम अन्तर्मन में चल रहे युद्ध से लड़ने के लिए स्वयं को तैयार कर पाते हैं ? हम क्या जानते मानते हैं कि अंतर्मन को भी बाजारवादी शक्तियों और प्रवृत्तियों ने किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है, लेकिन हम समझ नहीं पाते। 1947 में हमें राजनीतिक स्वतंत्रता मिली। आशा और विश्वास की नई किरण की प्रतीक्षा देश में की जाने लगी। .....अब देश में सब कुछ अपना होगा। अपना संविधान, अपनी राष्ट्रभाषा, अपनी संस्कृति, अपना धर्म, अपना समाज, अपनी जीवनशैली, अपने उद्योग, अपने धंधे, स्वावलम्बन, शाकाहार, स्वदेशी, अपनी नीतियाँ और अपना विश्वास–अपनो के लिए। और राजनीतिक स्वाधीनता के 72 वर्षों में क्या 'अपना' बन पाया? आज भी स्वभाषा, स्व–संस्कृति, स्वधर्म, स्वराज्य, सुराज्य, स्वनीति, स्वावलम्बन और सद्भावना की स्थापना के लिए 'समर शेष' है। १४ सितंबर को 'हिन्दी दिवस' मनाने का क्या अर्थ यह नहीं है कि हिन्दी आज भी अपने देश में, अपनों के बीच 'दासी' बनी हुई है? १४ सितंबर 'हिंदी दिवस' नहीं, अंग्रेजी हटाओ दिवस के रूप में मनाया जाना चाहिए। जब पराई और गुलामी की भाषा को गौरव और सम्मान मिले और देशी भाषाएं उपेक्षा और तिरस्कार पा रहीं हों तो मिली स्वतंत्रता पर प्रश्न उठेंगे ही। अभी समर शेष है उस 'स्व' के लिए जिसके अनगिनत रूप और धर्म हैं। यदि हम अपना 'स्व' नहीं लौटा पाए, तो हमारा अपना क्या बचेगा जिसे अंतर्मन से स्वीकार कर सकें और उस पर गौरवान्वित महसूस कर सकें। विश्व गुरु होने के लिए 'स्व' का अखण्ड निर्माण और विधान तो करना ही पड़ेगा। पर के सहारे 'स्व' का निर्माण नहीं हो सकता। 'स्व' से ही स्वधर्म, स्वभाषा, स्वराज्य, स्व–संस्कृति, स्वदेशी, स्वाभिमान, सद्भावना, सद्गुण, स्वराष्ट्र और स्वधर्म का निर्माण और निर्यात किया जा सकता है। समर शेष है–––––

विश्व में ऐसे आयुध निर्मित हो चुके हैं जो पलक झपकते मानव सभ्यता को समाप्त कर सकते हैं। लेकिन कोई युद्ध, कोई आयुध ऐसा अभी तक नहीं निर्मित किए गए जो विध्वंस हुई मानव सभ्यता को पल भर में बना सकें। विनाश के सारे तौर तरीके, विधि – विधान और अस्त्र–शस्त्र निर्मित तो हुए हैं, लेकिन निर्माण के नहीं।

हम सब को चिंतन इसी पर करने की आवश्यकता है। परमात्मा की बनाई सृष्टि को हम बचाएं और निर्माण के सभी कार्य आगे बढ़ते चले जाएं। इस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। राष्ट्रकवि दिनकर ने रश्मिरथी में महाभारत के वर्णन में उन्होंने कहा है – ''युद्ध के माध्यम से हम एक दूसरे को परास्त तो कर सकते हैं लेकिन युद्ध के माध्यम से हम दूसरे का हृदय नहीं जीत सकते।'' हृदय जीतने के लिए युद्ध नहीं प्रेम की आवश्यकता होती है। यह निर्माण मार्ग है। अपने अंतर्मन में दृष्टिपात करिए और स्वयं से पूछिए .....आपने स्वयं से कब और कितनी बार युद्ध किया ? कितनी बार जीता और कितनी बार हारे ? मानव सभ्यता में यह कार्य मनुष्य के लिए सबसे कठिन है। आज आग्नेय अस्त्र–शस्त्र से हम दूसरों को परास्त कर सकते हैं। लेकिन इनसे स्वयं को जीत नहीं सकते। लेकिन स्वयं का विनाश अवश्य कर सकते हैं। आज इन अस्त्र – शस्त्रों से हम स्वयं का विनाश कर रहे हैं। विनाश किसी प्रकार का हो, उससे जीवन का निर्माण नहीं किया जा सकता। बदलाव से तो जीवन बदल सकता है। एक बीज धरती में सड़कर नये अंकुरण के साथ बाहर आता है और नव जीवन का निर्माण करता है। लेकिन आधुनिक विज्ञान के माध्यम से जो कुछ निर्मित हो रहा है उसमें जो विनाश का पक्ष है, उसमें कहीं भी, निर्माण का पक्ष नहीं है। अब प्रश्न उठता है फिर हम क्यों ऐसे ऐसे अस्त्र–शस्त्रों का निर्माण करते हैं जिनसे विनाश तो होता है लेकिन निर्माण नहीं होता। पतन तो होता है लेकिन उत्थान नहीं होता। हानि तो होती है लेकिन लाभ नहीं होता। अंधकार तो होता है लेकिन प्रकाश नहीं होता। दुख तो मिलता है लेकिन कभी सुख नहीं मिलता। इस प्रश्न पर मानवतावादियों को अवश्य सोचने की आवश्यकता है, समझने की आवश्यकता है। चिंतन करने की आवश्यकता है। मानव मूल्य के क्षरण से आचरण का धर्म समाप्त हो रहा है। यह सबसे बड़ी चिंता की बात है। यह मानव का सबसे बड़ा पतन है। मानव में यदि मानवता नहीं है, मानव में सद्भावना नहीं है तो वह मानव कैसा ? इसलिए इस पर चिंतन करने की आवश्यकता है। हम अपनी दृष्टि में स्वयं यदि गिर रहे हैं, इसका अर्थ है हम अधोगामी बन रहे हैं। हम पतन की ओर जा रहे हैं – जल की तरह! हम निरंतर नीचे ही नीचे चले जा रहे हैं। हममें अग्नि का गुण–स्वभाव समाप्त हो रहा है। फिर भी स्वयं को अग्निमय दिखाने का प्रयास करते हैं ? यदि हम इस पर विचार करें और हमारे अंदर क्षमा, सहनशीलता, सहिष्णुता, शुभता, सत्यता, पवित्रता निरंतर बढ़ती जाए तो हम विश्व समाज को बहुत कुछ दे सकते हैं। राष्ट्रकवि दिनकर ने लिखा है – ***''सहनशीलता क्षमा दया को तभी पूजता जग है, बल का दर्प चमकता उसके पीछे जब जगमग है।''*** जब नाश मनुज पर छाता है पहले विवेक मर जाता है। विवेक मर रहा है, इस लिए समर शेष है। आज मनुष्य के अंदर से विवेक समाप्त हो रहा है। विवेक की मृत्यु क्यों हो रही है ? इस पर विचार करने की आवश्यकता है। आधुनिक विश्व समाज जिस तथाकथित प्रगति के रास्ते पर आगे बढ़ रहा है, वह एकांगी है। आर्थिक प्रगति से दुर्गुणों का विस्तार हुआ है, सद्गुणों का नहीं। और हमने विनाशकारी वैज्ञानिक प्रगति खूब कर ली है, लेकिन आत्मिक, सामाजिक, पारिवारिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और मानवतावादी प्रगति में निरंतर पीछे लुढ़क रहे हैं। इसलिए युद्ध जारी है। चिंतन करिए, हम स्वयं को सुखी व सम्पन्न बना रहे हैं संसाधनों से। उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, लेकिन अन्याय, शोषण, क्रूरता, हिंसा, स्वार्थ, विश्वासघात, ठगी, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, विषय वासना, लम्पटता, अपसंस्कृति को सजोये निरंतर आगे बढ़ते जा रहे हैं। शोषण, अन्याय, क्रूरता, हिंसा, विश्वासघात होते हुए हम देखते हैं, लेकिन मौन रहते हैं कि हमारा उससे व्यक्तिगत कोई अहित नहीं हो रहा है। क्या यह पाप नहीं है ? क्या यह अपराध नहीं है ? पाप और अपराध होते हुए मूकदर्शक बनना भी तो अपराध और पाप है। महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन काल में जहां भी अन्याय, शोषण, क्रूरता, हिंसा, विश्वासघात, पाखण्ड, अंधविश्वास, स्वार्थ, लम्पटता और अधर्म होते देखा वहां वह विरोध करने के लिए अंगद की तरह पांव जमाए खड़े हो गए। महर्षि दयानन्द के अनुयाई क्या इस पर विचार करेंगे ? हमारे आसपास जो अन्याय, शोषण, क्रूरता, हिंसा, लम्पटता, कामुकता आदि का ताण्डव मचा हुआ है, क्या उसके विरुद्ध हम अपनी आवाज बुलंद करते हैं ? क्या हम दुर्प्रवृत्तियों को समाप्त करने के लिए स्वयं को संकल्पित करते हैं? सही उत्तर है – नहीं – नहीं – नहीं। फिर समर शेष रहेगा... समर शेष रहेगा, आगे भी समर शेष रहेगा।

और उसके पाप के भागीदार हम आप होंगे। आप उस पाप से बच नहीं सकते। पाप और अपराध जैसे कृत्य जो स्वयं को भी विनाश के रास्ते पर ले चलते हैं और दूसरों को भी इनसे हानि होती है। पाप और अपराध से बचने के लिए वेद शास्त्रों में जो भी मानव सभ्यता, संस्कृति, धर्म, अध्यात्म, विद्या, ज्ञान–विज्ञान के निर्माण के लिए निर्देश दिया गया है, प्रेरणाएं दी गई हैं, उनको हम देखें समझें और आत्मसात करें। लेकिन हम करते नहीं हैं। हम स्वयं में एक समस्या बन गए हैं। अपने लिए भी और दूसरों के लिए भी। दुख और कष्ट को हम सहज रूप से देखें और उनके निवारण के लिए प्रयास करें। लेकिन हम न देखना चाहते हैं न तो उनका निवारण ही करना चाहते हैं। इसलिए मानव, मानव परिवार, समाज, संस्कृति, धर्म, अध्यात्म, विद्या और विज्ञान सभी पर एक बड़ा प्रश्न खड़ा हो रहा है, प्रश्न चिन्ह लग रहा है। हमारी संवेदना क्षीणता को प्राप्त हो रही है। हम मानव से पशु प्रवृति की ओर निरंतर द्रुत गति से आगे बढ़ रहे हैं, यह अत्यंत चिंता की बात है। अन्याय के प्रति, अधर्म के प्रति, पाप व अपराध के प्रति, दुष्कर्म के प्रति आगे बढ़कर उसके विरुद्ध खड़े नहीं होते। हम एक मूकदर्शक की भूमिका में आ गए हैं। इसलिए हमारे अन्दर से सद्गुणों का साम्राज्य समाप्त होता जा रहा है और दुर्गुणों का साम्राज्य बढ़ता जा रहा है। इस लिए समर शेष है।

सोचिए, एक शताब्दी पहले हमारी जो स्थिति थी आज हम उस स्थिति से कितना आगे बढ़ पाए हैं या कितना पीछे जा चुके हैं। हमारे अंदर जो बल, तेज और पुरुषार्थ है हम उसका कोई उपयोग नहीं करते। हमारे बुद्धि, वृत्ति, हमारी चेतना, विवेक, हमारी शक्ति, सत्साहस, सत्य के प्रति दृढ़ता और सुशांति कहां लुप्त हो गए ? हमें नहीं मालूम कब हमारा जीवन औपचारिकताओं के नाम हो गया । जीवन कब पाखण्ड, अंधविश्वास, अंधश्रद्धा और अंधभक्ति के नाम हो गया। कब सबसे अनमोल जीवन दिखावा, स्वार्थ और बेबसी के नाम हो गया। हम बलवान् हैं किसी कमजोर के लिए। हम बलवान् इसलिए नहीं हैं कि बलहीन की रक्षा करना हमारा धर्म है। महर्षि दयानन्द ने लिखा है – ***बलवान् व्यक्ति अपनी शक्ति का प्रयोग सज्जनों की रक्षा, उनके उत्थान में करे।*** इससे समाज में न्याय, धर्म और शान्ति की स्थापना होगी। क्या हम ऐसा करते हैं? क्या सज्जनता धर्म और शुभत्व के प्रचार–प्रसार के लिए प्रयास करते हैं? फिर समर शेष रहेगा ही।

आज सारा सृजन स्वयं को स्थापित करने, स्वयं को बढ़ाने, स्वयं को ऊर्जावान करने में हो रहा है। यह सृजन है या स्वार्थ है, कहना मुश्किल है। पिछली दो शताब्दियों में समाज सुधार, धर्म उत्थान, अध्यात्म और योग के प्रचार–प्रसार में जितने भी आंदोलन महापुरुषों के माध्यम से चलाए गए उन आंदोलनों ने समाज पर एक गहरी छाप छोड़ी थी। उनका गहरा प्रभाव समाज पर पड़ा था। लेकिन वे आंदोलन समय के साथ क्षीण होते चले गए, कमजोर होते चले गए, निर्बल होते चले गए। उन आंदोलनों को फिर से धार देने की आवश्यकता है। उन आंदोलनों में आर्य समाज सबसे प्रभावशाली, परिवर्तनधर्मी और सुधारवादी आंदोलन था। हमारा अतीत चमत्कार वाला था, वर्तमान को बनाने की आवश्यकता है। लेकिन हम तो तटस्थ वाली भूमिका में आ चुके हैं। इसलिए समर शेष है। इससे तो हम पाप के भागीदार ही बनेंगे, परोपकार के नहीं। मनुष्य होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह मानव समाज, प्रकृति, संस्कृति और शिक्षा के उत्थान के लिए जीवन का कुछ अंश प्रदान करे, समर्पित करे। जो कि नहीं किया जा रहा है। यह पतन का मार्ग है। यह पाप का मार्ग है। आप सोचिए, आपने अपने सम्पूर्ण जीवन में कितना स्वयं को बनाने में लगाया है कितना परिवार को बनाने में लगाया है। कितना समाज और संस्कृति के उत्थान के लिए लगाया है। यदि इस पर चिंतन करेंगे और उस पर अमल करेंगे। संवेदना जागी तो, आप अपना कुछ समर्पण स्वयं के लिए, परिवार के लिए, समाज और संस्कृति, धर्म के लिए दे पाएंगे। तटस्थ रह करके पाप और अपराध के ही भागीदार बनेंगे। राष्ट्र कवि ने लिखा जो ***तटस्थ हैं समय लिखेगा उनका भी इतिहास।*** वर्तमान उज्ज्वल है, वर्तमान के नींव पर भविष्य की दीवार खड़ी होती है और उस दीवार को बनाने में हमारी कितनी भूमिका है, इस पर हमें आज विचार करना है। भगवान् श्री कृष्ण ने द्वापर में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा कर विश्व मानवता को जो संदेश दिया था उस संदेश को हमें अपने दोनों कानों को खोलकर सुनना है और फिर उसे धारण करना है, जिससे मानवता बचे। मानव संस्कृति व सभ्यता बचे और धरती बचे।

ENTRY TO GRIHASTHA ASHRAMA

– ✍ Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

Grihastha Ashrama or a married life is a life of duties and responsibilities, arrived with pleasure and happiness. These four things do not happen automatically. Rather they are achieved through a continuous process and a sincere cooperation. Process is a scientific thing and cooperation comes out of love. So, there are three prerequisites for a good and successful marriage. They are a suitable boy, a suitable girl and a suitable environment to encircle the couple.

Our guiding book, the Sanskara Vidhi defines that Marriage is a sacrament which is performed when the girl and the youngman, who have maintained complete brahmcharya, acquired education and strength in body, and who possess compatible qualities, deeds and temperaments, and who are in love, are united to discharge the duties of Grihastha Ashrama, and to beget children according to the valid procedure and prescribed standards.

Regarding the valid procedures, there are eight types of Marriage, named as Braahma, Daiva, Aarsha, Praajaapatya, Aasura, Gaandharva, Raakshasa and Paishaacha. In these type of Marriages, some are just but else force or fraud or money is used. Marriage is a chaste bondage and lawful as well. Anything bad is not permitted there. Only that procedure is valid wherein no force or money is used but the Marriage is performed with happiness of both persons.

The prescribed standards demand certain do's and don'ts. First, the girl and the boy must not be below the age of 16 and 25 respectively. Below these levels, the girl's or the boy's body is not able to parent a good and healthy baby. Moreover, this 16 or 25 years' age must have maintained a complete brahmcharya. Along with this, both of them must be medically fit and free from any disease.

Secondly, Both the families of the couple must be free from incurable diseases. The science of life says that a patient of any disease should not be hated, and it should be dealt with sympathy and equality. But marriage is a different phenomenon. It multiplies and deepens serious diseases through new coming children. Non marriage in such a family is, therefore, a service to society.

Thirdly, both of them should belong to the same Varna or quality-class. Vedic

Culture is a culture of Varna-system. Varna does not mean sameness of birth. Rather it means sameness of properties & qualities, functions & deeds, and nature & temperament. The Sanskara Vidhi speaks that the bride and the bride-groom should examine mutually the qualities, acts and nature of one another. The characteristic behaviour of both be equal.

The physique, the beauty and qualities of both should be alike. Both of them be equally non-violent, truthful and sweet-speaking. Both be possessed of the sense of gratitude and mercy. Both be free from egoism, malignance, jealousy, passion and anger. Both be equally free from covetousness and be imbued with patriotism. Both have love for knowledge, and are fearless to speak the truth. Both are enthusiastic and ready to renounce evils like gambling, theft, wine, intoxicants, meat-eating etc. Both should be equally clever in domestic affairs.

This examination should be scientific and fair. They should be attractive and polite to each other; but this should not create any bias to mis-judge the other. For certain matters the elderly and loving men and women should conduct the examination for the couple.

Fourthly, the marriage should be decided by the swayamvar system, or the choice of the boys and girls. Rigveda (5.41.7) speaks, 'O people! If you marry your children according to their own choice after making them perfect in brahmcharya, education and the like, they in return will give you all pleasure and happiness, as they will be imbued with the various qualities, knowledge, acts of good undertaking, and different kinds of strength, including physical and spiritual maturity. They will be able to discharge properly the duties of household life, all day and night, like a learned couple. Such marriages, in their sanctity, are indeed auspicious for all, and the men and women of good nature and culture thus attain the desired benefit in life.'

Rishi Dayanand is an advocate of Swayamvar System. He writes, 'This will lead the world towards greater progress. In Aryavartta, so long as the Varna-Vyavastha existed, and the institution of marriage was well-maintained on self-chosen Swayamvar System, after the completion of education and discipline of Brahmcharya, the country was advanced in progress and prosperity in all respects. Even today this practice should continue, so that this country of Aryavartta can secure its previous position, and attain happiness and prosperity.'

Fifthly, the time and celebration of marriage should be gentlemen like. Nowadays the celebration contains firework, which is dangerous and therefore unwise. There are childish dances, lacking civilised manners, and consuming a lot of time without any gain. The celebration is just an event of pomp and show. The guests come, wait for very

long, have a quick food and go back in a hurry, without having a glance at the solemnisation of marriage.

The muhurtta is also something unnecessary. The fixation of a day and some hours is for managing things well. It has nothing to do with the good or bad of life. An hour has to be fixed, and it should be fixed on a day of Uttarayan Moonlight, according to the convenience of both families, and that too, is not binding or compulsory.

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः।
तथा तथास्य सर्वार्थाः सिध्यन्ते नात्र संशयः।।

– विदुर नीति (३/४१)

भावार्थ – जैसे-जैसे मनुष्य शुभ कार्यों में मन लगाता है, वैसे-वैसे उसकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

इज्याध्ययनदानादि तपः सत्यं क्षमा घृणा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः।।
तत्र पूर्वचतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते।
उत्तरश्च चतुर्वर्गो नामहात्मसु तिष्ठति ।।

– विदुर नीति (३/५५,५६)

भावार्थ – यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्यभाषण, क्षमा, दया और लोभ-त्याग यह धर्म का आठ प्रकार का मार्ग कहा गया है। इनमें से प्रथम चार (यज्ञ, अध्ययन, दान और तप) को दुर्जन लोग दम्भ=दिखावे के लिए भी सेवन कर सकते हैं, परन्तु अगले चार गुण (सत्य, क्षमा, दया और लोभ-त्याग) ये दुर्जनों में कभी नहीं रह सकते।

हिंदी गौरव गान

(१४ सितम्बर हिंदी दिवस पर विशेष)

प्यारा भारत देश मेरा देशों में सरताज,
धरा धाम पर नहीं है इसका कोई जोड़ीदार,
नील गगन के तले यहाँ है नदियों का विस्तार
हर कोई करता है बस भारत का दीदार।।

भारत माता आज पर बेगानी हो गई,
अंग्रेजी के मोह में भाषा हिन्दी खो गई,
दूध मुँह बच्चों को ए.बी.सी.डी रटवाते,
चले गए अंग्रेज पर अंग्रेजी पढ़वाते,
मानसिक गुलामी की भी हद हो गई,
अपने ही आंगन में अपनी भाषा खो गई।।

दिनदहाड़े अंग्रेजी ने डाका डाला है,
कर बाहर हिन्दी को इसने ठोका ताला है,
गली-गली चौराहों पर अंग्रेजी छाई है,
देश के जन गण तन मन में यही समाई है,
गृह स्वामिनी दरवाजे की दासी बन गई,
दूर देश कि मेम यहाँ पटरानी बन गई।।

जाग उठो भारत माता की संतानों अब तुम,
मोह छोड़ अंग्रेजी का हिन्दी अपना लो तुम,
सीधी सरल सुबोध सुखकर सुनने में लगे,
है पूर्ण रूप से वैज्ञानिक जो बोले सो लिखें,
भारत भाल की हिन्दी से फिर शोभा बढ़ जाए,
दयानन्द, गांधी के देश का गौरव बढ़ जाए।।

न्यायालयों में न्याय मिले अब भाषा हिन्दी में,
कार्यालयों का काम चले नित भाषा हिन्दी में,
विद्यालयों में छात्र पढ़े यहां भाषा हिन्दी में,
संसद का व्यवहार चले अह भाषा हिन्दी में,
जनता सोचे समझे और बोले हिन्दी में,
तब भारत माँ का मान बढ़ेगा पूरी धरती में।।

– ✍ प्रमोद गुप्ता
कोटा (राज.)
चलभाष – 9098066260

मन सहित पांच इन्द्रियां

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि, मनः षष्ठानि मे हृदि।
ब्रह्मणा संशितानि।
यैरेव ससृजे घोरं, तैरेव शांतिरस्तु नः।।
— अथर्व १९.९.५

ऋषि — वसिष्ठः (शन्तातिः) ।
देवता — बहवः (ब्रह्म, इन्द्रियाणि मनः च) ।
छन्द — पञ्चपदा पथ्या पङ् क्तिः ।

अन्वय — (इमानि) ये (यानि) जो (मनः षष्ठानि) मन से छठी (पंच) पांच (इन्द्रियाणि) ज्ञानेन्द्रियां के (में) मेरे (हृदि) हृदय में (ब्रह्मणा) जीवात्मा से (संशितानी) तीक्षण [होती हैं], (येः एव) जिनसे ही [मनुष्य] (घोरं) घोर [परिणाम] (ससृजे) उत्पन्न थे करता है, (तः एव) उन्हीं से (नः) हमें (शान्तिः) शान्ति (अस्तु) प्राप्त हो।

अर्थ — मानव—शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और छठा मन ये अद्भुत वस्तुएँ परमात्मा ने रची हैं, जो उसकी विलक्षण कारीगरी की द्योतक हैं। दर्पण में प्रतिबिम्ब के समान आँख की पुतली में कैसे सब दृश्य—पदार्थ प्रतिबिम्बित हो जाते हैं, किस प्रकार कर्णपटल पर शब्द प्रतिध्वनित हो जाता है, कैसे रसना रस का स्वाद ले लेती है, कैसे नासिका से गन्ध का पता चल जाता है, कैसे त्वचा कोमल व कठोर आदि स्पर्श की अनुभूति करा देती हैं, कैसे मन इन सब इन्द्रियों में सामंजस्य उत्पन्न करके इनके द्वारा ज्ञान ग्रहण कराता है और संकल्प—विकल्प करता है, यह सब बड़ा ही रहस्यमय प्रतीत होता है। असल में जिन्हें हम आँख, कान आदि कहते हैं, वे इन्द्रियाँ नहीं हैं, वे इन्द्रियों के गोलक— द्वारा या कार्य करने के साधन हैं। असली इन्द्रियाँ तो इन्द्रिय—प्रगोचर हैं, जो शक्ति—रूप हैं। जब देखने की शक्ति नष्ट हो जाती है, तब बाह्य आँख के विद्यमान होने पर भी मनुष्य देख नहीं पाता। यही कथा अन्य इन्द्रियों की भी है। पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ और मन अपने—अपने ज्ञान को लेकर हृदय में पहुँचते हैं, जहाँ आत्मा उन्हें तीक्ष्ण, सतेज और परिपक्व करता है। ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान तबतक प्रमाणित और फलदायक नहीं होता, जबतक आत्मा की छाप उस पर न लग जाये। आत्मा उस इन्द्रिय—प्राप्त ज्ञान का विश्लेषण कर उसकी सत्यता का निर्णय करता है।

यद्यपि ये इन्द्रियाँ हमारे लिए परमेश्वर का वरदान—रूप हैं, तो भी कई बार मनुष्य इनका दुरुपयोग करके इनसे बड़े—बड़े घोर परिणाम उत्पन्न कर लेता है। अदर्शनीय दृश्यों, अश्रवणीय शब्दों, अस्वादनीय रसों, अघ्रातव्य गन्धों एवं अस्पृश्य स्पर्शों को ग्रहण कर तथा असंकल्पनीय संकल्पों को संकल्पित कर वह स्वयं को मूर्तिमती अभद्रता की प्रतिकृति बना लेता है। पर हम तो इन इंद्रियों का सदुपयोग ही करना चाहते हैं। इनका सदुपयोग हमारे लिए सुख शांति का द्वार खोल सकता है। विश्व के सब मानव यदि भद्र दर्शन, भद्र श्रवण आदि में तत्पर हो जायें तो सम्पूर्ण विश्व में भद्रता का साम्राज्य स्थापित हो जायेगा और शान्ति का स्रोत प्रवाहित होने लगेगा।

अतः आओ, हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों एवं मन को आत्मा द्वारा तीक्ष्ण कराकर उनसे शुभ परिणामों को उत्पन्न न करें और जगत् में शांति की लहर उठाने में सफल हों। **********

(साभार — वेद मञ्जरी पुस्तक)

जातो जायते सुदिनत्वे अहनाम्।।
(ऋग्वेद ३—८—५)

हे मानव तुम्हारे जीवन में अच्छे दिन केवल प्रार्थना या किसी के दया से नहीं आएँगे, अपितु जन्म से ही बुद्धिपूर्वक पराक्रम और पुरुषार्थ करने से अच्छे दिन अवश्य हीं आएँगे।

O Man! Good days in your life will not come just by prayer or At the mercy of someone, Although right from birth, good days will definitely come due to valor and effort.

श्राद्ध क्या है ?

श्राद्ध क्या है ? श्राद्ध का अर्थ है सत्य का धारण करना अथवा जिसको श्रद्धा से धारण किया जाए। श्रद्धापूर्वक मन में प्रतिष्ठा रखकर, विद्वान्, अतिथि, माता–पिता, आचार्य आदि की सेवा करने का नाम श्राद्ध है।

श्राद्ध जीवित माता–पिता, आचार्य, गुरु आदि पुरूषों का ही हो सकता है, मृतकों का नहीं, मृतकों का श्राद्ध तो पौराणिकों की लीला है। वैदिक युग में तो मृतक श्राद्ध का नाम भी नहीं था।

वेद तो बड़े स्पष्ट शब्दों में माता–पिता, गुरु और बड़ों की सेवा का आदेश देता है, यथा –

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
– (अथर्व ३–३०–२)

पुत्र पिता के अनुकूल कर्म करने वाला और माता के साथ उत्तम मन से व्यवहार करने वाला हो।

मृतक के लिए बर्तन देने चाहिएँ और वे वहाँ पहुँच जाएँगे, मृतक का श्राद्ध होना चाहिए तथा इस प्रकार होना चाहिए और वहाँ पहुँच जाएगा, ऐसा किसी भी वेदमंत्र में विधान नहीं है।

श्राद्ध जीवितों का ही हो सकता है, मृतकों का नहीं। पितर संज्ञा भी जीवितों की ही होती है मृतकों की नहीं। वैदिक धर्म की इस सत्यता को सिद्ध करने लिए सबसे पहले पितर शब्द पर विचार किया जाता है।

पितर शब्द ''पा रक्षेण'' धातु से बनता है, अतः पितर का अर्थ पालक, पोषक,रक्षक तथा पिता होता है..जीवित माता–पिता ही रक्षण और पालन–पोषण कर सकते हैं। मरा हुआ दूसरों की रक्षा तो क्या करेगा उससे अपनी रक्षा भी नहीं हो सकती, अतः मृतकों को पितर मानना मिथ्या तथा भ्रममूलक है। वेद, रामायण, महाभारत, गीता, पुराण, ब्राह्मण ग्रन्थ तथा मनुस्मृति आदि शास्त्रों के अवलोकन से यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि पितर संज्ञा जीवितों कि है मृतकों कि नहीं –

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु !
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् !!
(यजुर्वेदः–१६–५७)

हमारे द्वारा बुलाये जाने पर सोमरस का पान करनेवाले पितर प्रीतिकारक यज्ञो तथा हमारे कोशों में आएँ, वे पितर लोग हमारे वचनों को सुने, हमें उपदेश दें तथा हमारी रक्षा करें।

इस मन्त्र में महीधर तथा उव्वट ने इस बात को स्वीकार किया है कि पितर जीवित होते है, मृतक नहीं क्योंकि मृतक न आ सकते है, न सुन सकते है न उपदेश कर सकते है और न रक्षा कर सकते हैं –

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभि गृणन्तु विश्वे। (अथर्ववेद –१८–१–५२)

हे पितरो ! आप घुटने टेक कर और दाहिनी ओर बैठ कर हमारे इस अन्न को ग्रहण करें।

इस मन्त्र का अर्थ करते हुए सायण, महीधर, उव्वट और ग्रिफिथ साहब – सब घुटने झुककर वेदी के दक्षिण ओर बैठना बता रहे हैं। क्या मुर्दों के घुटने होते है ? इस वर्णन से प्रकट हो जाता है कि जीवित प्राणियों की ही पितर संज्ञा है।

ज्येष्ठो भ्राता पिता वापि यश्च विद्यां प्रयच्छति।
त्रयस्ते पितरो ज्ञेया धामे च पथि वर्तिनः ।।
(वाल्मीकि रामायण :–१८–१३)

धर्म–पथ पर चलने वाला बड़ा भाई ,पिता और विद्या देने वाला – ये तीनों पितर जानने चाहिए।

जनिता चोपनेता च यस्तु विद्यां प्रयच्छति।
अन्नदाता भयस्त्राता पञ्चैता पितरः स्मृताः ।।
(चाणक्य नीति :–५–२२)

विद्या देनेवाला, अन्न देनेवाला, भय से रक्षा करने वाला, जन्मदाता – ये मनुष्यों के पितर कहलाते हैं।

श्वेताश्वेतारोपनिषद् के इस कथन के अनुसार –

नैव स्त्री न पुंमानेश न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्चरीरमादत्ते तेन तेन स लक्ष्यते ।। (५–१०)

यह आत्मा न स्त्री है, न पुरुष है न ही यह नपुंसक है, किन्तु जिस–जिस शारीर को ग्रहण करता है उस उस से लक्षित किया जाता है। मरने के बाद इसकी पितर संज्ञा कैसे हो सकती है ?

यदि दुर्जनतोषन्याय वश मृतक श्राद्ध स्वीकार कर लिया जाए तो इसमें अनेक दोष होंगे। सबसे पहला दोष कृतहानि का होगा। कर्म कोई करे और फल किसी और को मिले, उसको कृत हानि कहते है। परिश्रम कोई करे और फल किसी और को मिले। दान पुत्र करे और फल माता–पिता को मिले तो कृत हानि दोष आएगा।

दूसरा दोष अकृताभ्यागम का होगा। कर्म किया नहीं और फल प्राप्त हो जाए, उसे अकृताभ्यागम कहते है। मनुष्य के न्याय में तो ऐसा हो सकता है कि कर्म कोई करे और फल किसी और को मिल जाए, परन्तु परमात्मा के न्याय में ऐसा नहीं हो सकता। पौराणिक कहते हैं कि फल को अर्पण करने के कारण दूसरे को मिल जाता है, परन्तु यह बात ठीक नहीं। बेटा किसी व्यक्ति को मारकर उसका फल पिता को अर्पण कर दे तो क्या पिता को फांसी हो जायेगी? यदि ऐसा होने लग जाए तब तो लोग पाप का संकल्प भी पौराणिक पण्डितों को ही कर दिया करेंगे। इन दोषों के कारण भी मृतक श्राद्ध सिद्ध नहीं होता।

अब विचारणीय बात है यह है कि उन्हें भोजन किस प्रकार मिलेगा। भोजन वहाँ पहुँचता है या पितर लोग यहाँ करने आते है। यदि कहो कि वहीं पहुँचता है तो प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। क्योंकि तृप्ति ब्राह्मण की होती है। यदि भोजन पितरों को पहुँच जाता तब तो वह सैकड़ों घरों में भोजन कर सकता था। मान लो भोजन वहाँ जाता है तब प्रश्न यह है कि वही सामान पहुँचता है जो पण्डितजी को खिलाया जाता है या पितर जिस योनि में हो उसके अनुरूप मिलता है। यदि वही सामान मिलता हो और पितर चींटी हो तो दबकर मर जायेगी और यदि पितर हाथी हो तो उसको क्या असर होगा? यदि योनि के अनुसार मिलता है तब यदि पितर मर कर सूअर बन गया हो तो क्या उसको विष्ठा के रूप में भोजन मिलेगा ? यह कितना अन्याय और अत्याचार है कि ब्राह्मणों को खीर और पूड़ी खिलानी पड़ती है और उसके बदले मिलता है मल। इस सिद्धांत के अनुसार श्राद्ध करने वालों को चाहिए कि ब्राह्मणों को कभी घास, कभी मांस, कभी कंकर–पत्थर आदि खिलाये क्योंकि चकोर का वही भोजन है। योनियाँ अनेक है और प्रत्येक का भोजन भिन्न–भिन्न होता है, अतः बदल–बदलकर खाना खिलाना चाहिए, क्योंकि पता नहीं पितर किस योनि में है। कहते हैं श्राद्ध करने वाले का पिता पेट में बैठ कर, दादा बाँई कोख में बैठकर, परदादा दाँई कोख में बैठ कर और खाने वाला पीठ में बैठ कर भोजन करता है।

पौराणिकों! यह भोजन करने का क्या तरीका है?पहले पितर खाते है या ब्राह्मण ? झूठा कौन खाता है ? क्या पितर ब्राह्मण के मल और खून का भोजन करते हैं ?

एक बात और पितर शरीर सहित आते है या बिना शरीर के ? यदि शरीर के साथ आते है तो पेट में उतनी जगह नहीं कि सब उसमे बैठ जाएँ और साथ ही आते किसी ने देखा भी नहीं अतः शरीर को छोड़ कर ही आते होंगे। पितरों के आने–जाने में, भोजन परोसने में तथा खाने आदि में समय तो लगता ही है, अतः पितर वहाँ जो शरीर छोड़ कर आये है उसे भस्म कर दिया जाएगा, इस प्रकार सृष्टि बहुत जल्दी नष्ट हो जायेगी। मनुष्यों की आयु दो–तीन मास से अधिक नहीं होगी। जब क्वार का महिना आएगा तभी मृत्यु हो जायेगी, अतः श्राद्ध कदापि नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार यह स्पष्ट सिद्ध है कि श्राद्ध जीवित माता–पिता का ही हो सकता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती का भी यही अटल सिद्धांत है। मृतक श्राद्ध अवैदिक और अशास्त्रीय है। यह तर्क से सिद्ध नहीं होता। यह स्वार्थी, टकापंथी और पौराणिकों का मायाजाल है।

सावधान! पौराणिक लैटर बाक्स में छोड़ा हुआ पार्सल अपने स्थान पर नहीं पहुँचता। ****

– ***(प्रस्तुत लेख पूज्य स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती जी के ट्रैक्ट का संपादित अंश है)***

आर्ष क्रान्ति पत्रिका के लिए आर्य लेखक बन्धु अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ भेंजे।

नवयुवक राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम पत्र

– ✍ सरदार भगतसिंह

['कौम के नाम सन्देश' के रूप में प्रसिद्ध और 'नवयुवक राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम पत्र' शीर्षक के साथ मिले इस दस्तावेज के कई प्रारूप और हिन्दी अनुवाद उपलब्ध हैं, यह एक संक्षिप्त रूप है। लाहौर के पीपुल्ज में 29 जुलाई, 1931 और इलाहाबाद के अभ्युदय में 8 मई, 1931 के अंक में इसके कुछ अंश प्रकाशित हुए थे। यह दस्तावेज अंग्रेज सरकार की एक गुप्त पुस्तक 'बंगाल में संयुक्त मोर्चा आंदोलन की प्रगति पर नोट' से प्राप्त हुआ, जिसका लेखक सी आई डी अधिकारी सी ई एस फेयरवेदर था और जो उसने 1936 में लिखी थी। उसके अनुसार यह लेख भगतसिंह ने लिखा था और 3 अक्तूबर, 1931को श्रीमती विमला प्रभादेवी के घर से तलाशी में हासिल हुआ था। सम्भवतः 2 फरवरी, 1931 को यह दस्तावेज लिखा गया।]

प्रिय साथियो,

इस समय हमारा आन्दोलन अत्यन्त महत्वपूर्ण परिस्थितियों में से गुजर रहा है। एक साल के कठोर संग्राम के बाद गोलमेज कान्फ्रेन्स ने हमारे सामने शासन–विधान में परिवर्तन के सम्बन्ध में कुछ निश्चित बातें पेश की हैं और कांग्रेस के नेताओं को निमन्त्रण दिया है कि वे आकर शासन–विधान तैयार करने के कामों में मदद दें। कांग्रेस के नेता इस हालत में आन्दोलन को स्थगित कर देने के लिए तैयार दिखायी देते हैं। वे लोग आन्दोलन स्थगित करने के हक में फैसला करेंगे या खिलाफ, यह बात हमारे लिये बहुत महत्व नहीं रखती। यह बात निश्चित है कि वर्तमान आन्दोलन का अन्त किसी न किसी प्रकार के समझौते के रूप में होना लाजिमी है। यह दूसरी बात है कि समझौता जल्दी हो जाये या देरी हो।

वस्तुतः समझौता कोई हेय और निन्दा–योग्य वस्तु नहीं, जैसा कि साधारणतः हम लोग समझते हैं, बल्कि समझौता राजनैतिक संग्रामों का एक अत्यावश्यक अंग है। कोई भी कौम, जो किसी अत्याचारी शासन के विरुद्ध खड़ी होती है, जरूरी है कि वह प्रारम्भ में असफल हो और अपनी लम्बी जद्दोजहद के मध्यकाल में इस प्रकार के समझौते के जरिये कुछ राजनैतिक सुधार हासिल करती जाये, परन्तु वह अपनी लड़ाई की आखिरी मंजिल तक पहुँचते–पहुँचते अपनी ताकतों को इतना दृढ़ और संगठित कर लेती है और उसका दुश्मन पर आखिरी हमला ऐसा जोरदार होता है कि शासक लोगों की ताकतें उस वक्त तक भी यह चाहती हैं कि उसे दुश्मन के साथ कोई समझौता कर लेना पड़े। यह बात रूस के उदाहरण से भली–भाँति स्पष्ट की जा सकती है।

1905 में रूस में क्रान्ति की लहर उठी। क्रान्तिकारी नेताओं को बड़ी भारी आशाएँ थीं, लेनिन उसी समय विदेश से लौट कर आये थे, जहाँ वह पहले चले गये थे। वे सारे आन्दोलन को चला रहे थे। लोगों ने कोई दर्जन भर भूस्वामियों को मार डाला और कुछ मकानों को जला डाला, परन्तु वह क्रान्ति सफल न हुई। उसका इतना परिणाम अवश्य हुआ कि सरकार कुछ सुधार करने के लिये बाध्य हुई और ड्यूमा (पार्लियामेन्ट) की रचना की गयी। उस समय लेनिन ने ड्यूमा में जाने का समर्थन किया, मगर 1906 में उसी का उन्होंने विरोध शुरू कर दिया और 1907 में उन्होंने दूसरी ड्यूमा में जाने का समर्थन किया, जिसके अधिकार बहुत कम कर दिये गये थे। इसका कारण था कि वह ड्यूमा को अपने आन्दोलन का एक मंच (प्लेटफार्म) बनाना चाहते थे।

इसी प्रकार 1917 के बाद जब जर्मनी के साथ रूस की सन्धि का प्रश्न चला, तो लेनिन के सिवाय बाकी सभी लोग उस सन्धि के खिलाफ थे। परन्तु लेनिन ने कहा, "शान्ति, शान्ति और फिर शान्ति – किसी भी कीमत पर हो, शान्ति। यहाँ तक कि यदि हमें रूस के कुछ प्रान्त भी जर्मनी के 'वारलार्ड' को सौंप देने पड़ें,

तो भी शान्ति प्राप्त कर लेनी चाहिए।'' जब कुछ बोल्शेविक नेताओं ने भी उनकी इस नीति का विरोध किया, तो उन्होंने साफ कहा कि ''इस समय बोल्शेविक सरकार को मजबूत करना है।''

जिस बात को मैं बताना चाहता हूँ वह यह है कि समझौता भी एक ऐसा हथियार है, जिसे राजनैतिक जद्दोजहद के बीच में पग–पग पर इस्तेमाल करना आवश्यक हो जाता है, जिससे एक कठिन लड़ाई से थकी हुई कौम को थोड़ी देर के लिये आराम मिल सके और वह आगे युद्ध के लिये अधिक ताकत के साथ तैयार हो सके। परन्तु इन सारे समझौतों के बावजूद जिस चीज को हमें भूलना नहीं चाहिए, वह हमारा आदर्श है जो हमेशा हमारे सामने रहना चाहिए। जिस लक्ष्य के लिये हम लड़ रहे हैं, उसके सम्बन्ध में हमारे विचार बिलकुल स्पष्ट और दृढ़ होने चाहिए। यदि आप सोलह आने के लिये लड़ रहे हैं और एक आना मिल जाता है, तो वह एक आना जेब में डाल कर बाकी पन्द्रह आने के लिये फिर जंग छेड़ दीजिए। हिन्दुस्तान के माडरेटों की जिस बात से हमें नफरत है वह यही है कि उनका आदर्श कुछ नहीं है। वे एक आने के लिये ही लड़ते हैं और उन्हें मिलता कुछ भी नहीं।

भारत की वर्तमान लड़ाई ज़्यादातर मध्य वर्ग के लोगों के बलबूते पर लड़ी जा रही है, जिसका लक्ष्य बहुत सीमित है। कांग्रेस दूकानदारों और पूँजीपतियों के जरिये इंग्लैण्ड पर आर्थिक दबाव डाल कर कुछ अधिकार ले लेना चाहती है। परन्तु जहाँ तक देश की करोड़ों मजदूर और किसान जनता का ताल्लुक है, उनका उद्धार इतने से नहीं हो सकता। यदि देश की लड़ाई लड़नी हो, तो मजदूरों, किसानों और सामान्य जनता को आगे लाना होगा, उन्हें लड़ाई के लिये संगठित करना होगा। नेता उन्हें आगे लाने के लिये अभी तक कुछ नहीं करते, न कर ही सकते हैं। इन किसानों को विदेशी हुकूमत के साथ–साथ भूमिपतियों और पूँजीपतियों के जुए से भी उद्धार पाना है, परन्तु कांग्रेस का उद्देश्य यह नहीं है।

इसलिये मैं कहता हूँ कि कांग्रेस के लोग सम्पूर्ण क्रान्ति नहीं चाहते। सरकार पर आर्थिक दबाव डाल कर वे कुछ सुधार और लेना चाहते हैं। भारत के धनी वर्ग के लिये कुछ रियायतें और चाहते हैं और इसलिये मैं यह भी कहता हूँ कि कांग्रेस का आन्दोलन किसी न किसी समझौते या असफलता में खत्म हो जायेगा। इस हालत में नौजवानों को समझ लेना चाहिए कि उनके लिये वक्त और भी सख्त आ रहा है। उन्हें सतर्क हो जाना चाहिए कि कहीं उनकी बुद्धि चकरा न जाये या वे हताश न हो बैठें। महात्मा गाँधी की दो लड़ाइयों का अनुभव प्राप्त कर लेने के बाद वर्तमान परिस्थितियों और अपने भविष्य के प्रोग्राम के सम्बन्ध में साफ–साफ नीति निर्धारित करना हमारे लिये अब ज्यादा जरूरी हो गया है।

इतना विचार कर चुकने के बाद मैं अपनी बात अत्यन्त सादे शब्दों में कहना चाहता हूँ। आप लोग इंकलाब–जिन्दाबाद (long live revolution) का नारा लगाते हैं। यह नारा हमारे लिये बहुत पवित्र है और इसका इस्तेमाल हमें बहुत ही सोच–समझ कर करना चाहिए। जब आप नारे लगाते हैं, तो मैं समझता हूँ कि आप लोग वस्तुतः जो पुकारते हैं वही करना भी चाहते हैं। असेम्बली बम केस के समय हमने क्रान्ति शब्द की यह व्याख्या की थी – क्रान्ति से हमारा अभिप्राय समाज की वर्तमान प्रणाली और वर्तमान संगठन को पूरी तरह उखाड़ फेंकना है। इस उद्देश्य के लिये हम पहले सरकार की ताकत को अपने हाथ में लेना चाहते हैं। इस समय शासन की मशीन अमीरों के हाथ में है। सामान्य जनता के हितों की रक्षा के लिये तथा अपने आदर्शों को क्रियात्मक रूप देने के लिये – अर्थात् समाज का नये सिरे से संगठन कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों के अनुसार करने के लिये – हम सरकार की मशीन को अपने हाथ में लेना चाहते हैं। हम इस उद्देश्य के लिये लड़ रहे हैं। परन्तु इसके लिये साधारण जनता को शिक्षित करना चाहिए।

जिन लोगों के सामने इस महान क्रान्ति का लक्ष्य है, उनके लिये नये शासन–सुधारों की कसौटी क्या होनी चाहिए? हमारे लिये निम्नलिखित तीन बातों पर ध्यान रखना किसी भी शासन–विधान की परख के लिये जरूरी है –

1. शासन की जिम्मेदारी कहाँ तक भारतीयों को सौंपी जाती है?
2. शासन–विधान को चलाने के लिये किस प्रकार की सरकार बनायी जाती है और उसमें हिस्सा लेने का आम जनता को कहाँ तक मौका मिलता है?

3. भविष्य में उससे क्या आशाएँ की जा सकती हैं? उस पर कहाँ तक प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं? सर्व–साधारण को वोट देने का हक दिया जाता है या नहीं?

भारत की पार्लियामेन्ट का क्या स्वरूप हो, यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। भारत सरकार की कौंसिल आफ स्टेट सिर्फ अमीरों का जमघट है और लोगों को फाँसने का एक पिंजरा है, इसलिये उसे हटा कर एक ही सभा, जिसमें जनता के प्रतिनिधि हों, रखनी चाहिए। प्रान्तीय स्वराज्य का जो निश्चय गोलमेज कान्फ्रेन्स में हुआ, उसके सम्बन्ध में मेरी राय है कि जिस प्रकार के लोगों को सारी ताकतें दी जा रही हैं, उससे तो यह 'प्रान्तीय स्वराज्य' न होकर 'प्रान्तीय जुल्म' हो जायेगा।

इन सब अवस्थाओं पर विचार करके हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि सबसे पहले हमें सारी अवस्थाओं का चित्र साफ तौर पर अपने सामने अंकित कर लेना चाहिए। यद्यपि हम यह मानते हैं कि समझौते का अर्थ कभी भी आत्मसमर्पण या पराजय स्वीकार करना नहीं, किन्तु एक कदम आगे और फिर कुछ आराम है, परन्तु हमें साथ ही यह भी समझ लेना कि समझौता इससे अधिक भी और कुछ नहीं। वह अन्तिम लक्ष्य और हमारे लिये अन्तिम विश्राम का स्थान नहीं।

हमारे दल का अन्तिम लक्ष्य क्या है और उसके साधन क्या हैं – यह भी विचारणीय है। दल का नाम 'सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी' है और इसलिए इसका लक्ष्य एक सोशलिस्ट समाज की स्थापना है। कांग्रेस और इस दल के लक्ष्य में यही भेद है कि राजनैतिक क्रान्ति से शासन–शक्ति अंग्रेजों के हाथ से निकल हिन्दुस्तानियों के हाथों में आ जायेगी। हमारा लक्ष्य शासन–शक्ति को उन हाथों के सुपुर्द करना है, जिनका लक्ष्य समाजवाद हो। इसके लिये मजदूरों और किसानों को संगठित करना आवश्यक होगा, क्योंकि उन लोगों के लिये लार्ड रीडिंग या इरविन की जगह तेजबहादुर या पुरुषोत्तम दास ठाकुर दास के आ जाने से कोई भारी फर्क न पड़ सकेगा।

पूर्ण स्वाधीनता से भी इस दल का यही अभिप्राय है। जब लाहौर कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया, तो हम लोग पूरे दिल से इसे चाहते थे, परन्तु कांग्रेस के उसी अधिवेशन में महात्मा जी ने कहा कि "समझौते का दरवाजा अभी खुला है।" इसका अर्थ यह था कि वह पहले ही जानते थे कि उनकी लड़ाई का अन्त इसी प्रकार के किसी समझौते में होगा और वे पूरे दिल से स्वाधीनता की घोषणा न कर रहे थे। हम लोग इस बेदिली से घृणा करते हैं।

इस उद्देश्य के लिये नौजवानों को कार्यकर्ता बन कर मैदान में निकलना चाहिए, नेता बनने वाले तो पहले ही बहुत हैं। हमारे दल को नेताओं की आवश्यकता नहीं। अगर आप दुनियादार हैं, बाल–बच्चों और गृहस्थी में फँसे हैं, तो हमारे मार्ग पर मत आइए। आप हमारे उद्देश्य से सहानुभूति रखते हैं, तो और तरीकों से हमें सहायता दीजिए। सख्त नियन्त्रण में रह सकने वाले कार्यकर्ता ही इस आन्दोलन को आगे ले जा सकते हैं। जरूरी नहीं कि दल इस उद्देश्य के लिये छिप कर ही काम करे। हमें युवकों के लिये स्वाध्याय–मण्डल (study circle) खोलने चाहिए। पैम्फलेटों और लीफलेटों, छोटी पुस्तकों, छोटे–छोटे पुस्तकालयों और लेक्चरों, बातचीत आदि से हमें अपने विचारों का सर्वत्र प्रचार करना चाहिए।

हमारे दल का सैनिक विभाग भी संगठित होना चाहिए। कभी–कभी उसकी बड़ी जरूरत पड़ जाती है। इस सम्बन्ध में मैं अपनी स्थिति बिलकुल साफ कर देना चाहता हूँ। मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, उसमें गलतफहमी की सम्भावना है, पर आप लोग मेरे शब्दों और वाक्यों का कोई गूढ़ अभिप्राय न गढ़ें।

यह बात प्रसिद्ध ही है कि मैं आतंकवादी (terrorist) रहा हूँ, परन्तु मैं आतंकवादी नहीं हूँ। मैं एक क्रान्तिकारी हूँ, जिसके कुछ निश्चित विचार और निश्चित आदर्श हैं और जिसके सामने एक लम्बा कार्यक्रम है। मुझे यह दोष दिया जायेगा, जैसा कि लोग राम प्रसाद 'बिस्मिल' को भी देते थे कि फाँसी की काल–कोठरी में पड़े रहने से मेरे विचारों में भी कोई परिवर्तन आ गया है। परन्तु ऐसी बात नहीं है। मेरे विचार अब भी वही हैं। मेरे हृदय में अब भी उतना ही और वैसा ही उत्साह है और वही लक्ष्य है जो जेल के बाहर था। पर मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि हम बम से कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकते। यह बात हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी के इतिहास से बहुत आसानी से मालूम हो जाती है। केवल बम

फेंकना न सिर्फ व्यर्थ है, अपितु बहुत बार हानिकारक भी है। उसकी आवश्यकता किन्हीं खास अवस्थाओं में ही पड़ा करती है। हमारा मुख्य लक्ष्य मजदूरों और किसानों का संगठन होना चाहिए। सैनिक विभाग युद्ध–सामग्री को किसी खास मौके के लिये केवल संग्रह करता रहे।

यदि हमारे नौजवान इसी प्रकार प्रयत्न करते जायेंगे, तब जाकर एक साल में स्वराज्य तो नहीं, किन्तु भारी कुर्बानी और त्याग की कठिन परीक्षा में से गुजरने के बाद वे अवश्य ही विजयी होंगे।

इंकलाब–जिन्दाबाद!******************

उपासना – जिस करके ईश्वर ही के आनन्द स्वरूप में अपने आत्मा को मग्न करना होता है; उसको **उपासना** कहते हैं।

निर्गुणोपासना – शब्द, स्पर्श और रूप, रस, गंध, संयोग-वियोग, हल्का, भारी अविद्या, जन्म, मरण और दुख आदि गुणों से रहित परमात्मा को जानकर जो उसकी उपासना करनी है, उसको **निर्गुणोपासना** कहते हैं।

सगुणोपासना – जिसको सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, शुद्ध, नित्य, आनन्द, सर्वव्यापक, सनातन, सर्वकर्ता, सर्वाधार, सर्वस्वामी, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी, मगंलमय, सर्वानन्दप्रद, सर्वपिता, सब जगत् का रचने वाला, न्यायकारी, दयालु और सत्य गुणों से युक्त जानके जो ईश्वर की उपासना करनी है; सो **सगुणोपासना** कहाती है।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

मैकाले का सांया

जड़ों से उखड़े भूमि से बिछड़े
आकाश में वितान बना दिए
सिखा विदेशी भाव सभी को
आधुनिक विद्वान् बना दिए
पर उन विद्वानों पर कैसा
घोर अभिमान छाया है
दीये की बाती पर डोल रहा
मैकाले का कलुषित सांया है।

देख पाश्चात्य चमक दमक
अपनी ही दृष्टि में हीन हो
विद्या के प्रतिमान गढ़ते
विमूढ़ता के अधीन हो
इस अंधानुकरण ने फिर से
हमारा पतन दिखाया है
दीये की बाती पर डोल रहा
मैकाले का कलुषित सांया है।

काले अक्षर ठूंस- ठूँसकर
किस योग्य हम बन पाए हैं?
छोड़ चिर संचित संस्कारों को
विदेशी तत्व अपनाए हैं
चार पंक्तियाँ लिख लेना
कभी ज्ञान नहीं कहलाया है
दीये की बाती पर डोल रहा
मैकाले का कलुषित सांया है।

– ✍ क्षितिज जैन "अनघ"

हिन्दी को भी चाहिए संक्रमण से मुक्ति .

– ✍ विनोद बंसल

किसी राष्ट्र को समझना हो तो उसकी संस्कृति को समझना आवश्यक है। उसकी संस्कृति को समझने हेतु वहां की भाषा का ज्ञान भी आवश्यक है। विश्व के लगभग सभी देशों की अपनी अपनी राजभाषाएँ हैं जिनके माध्यम उनके देशवासी परस्पर संवाद, व्यवहार, लेखन, पठन–पाठन इत्यादि कार्य करते हैं. स्वभाषा ही व्यक्ति को स्वच्छंद अभिव्यक्ति, सोचने की शक्ति, विचार, व्यवहार, शिक्षा व संस्कार प्रदान करते हुए उसके जीवन को सुखमय व समृद्ध बनाती है। हम जितना अपनी मात्र भाषा में प्रखरता व प्रामाणिकता से अपने विचारों की अभिव्यक्ति कर सकते हैं उतना किसी अन्य भाषा में नहीं। हमें गर्व है कि विश्व की सर्वाधिक बोले जाने वाली भाषाओं में हिंदी का तीसरा स्थान हैं। तथा इसे बोलने वाले देश में सबसे अधिक हैं।

इतना सब कुछ होने के बावजूद भी यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमारी आज तक कोई राष्ट्रभाषा नहीं है। हमारे संविधान के अनुच्छेद 343 (1) में यह तो कहा गया है कि भारत की राजभाषा 'हिंदी' और लिपि 'देवनागरी' है। किन्तु इसे राष्ट्र भाषा बनाए जाने के अब तक के सभी प्रयास असफल ही रहे। इसे राजभाषा का स्थान 14 सितंबर 1949 को मिला था।

यदि इसकी पृष्ठ भूमि में जाएँ तो पता चलता है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हिंदी को जनमानस की भाषा बताते हुए 1918 के हिंदी साहित्य सम्मेलन में इसे राष्ट्रभाषा बनाने की बात कही थी। जवाहरलाल नेहरू जी ने भी हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की वकालत तो की थी किन्तु उनके शासनकाल में ही हिंदी को एक 'खिचड़ी भाषा' के रूप में विकसित करने का अतार्किक और अवैज्ञानिक प्रयास किया गया। उनका मानना था कि हिंदी में देश की सभी भाषाओं के शब्दों को सम्मिलित कर एक ऐसी 'खिचड़ी भाषा' बना ली जाए जिस पर किसी को आपत्ति ना हो। उन्होंने हिंदी को 'हिंदुस्तानी' (हिंदी और ऊर्दू का मिश्रण) भाषा बनाने का समर्थन किया था। यह प्रयास देखने में तो उस समय अच्छा लगा, परन्तु, वास्तव में यही विचार हिंदी का सर्वनाश करने वाला सिद्ध हुआ।

संयोगवस, गत कुछ माह से मुझे लगातार हिन्दी के साथ साथ रेडियो से उर्दू भाषा में भी समाचार सुनने का सौभाग्य मिला. मैंने पाया कि एक ओर जहां उर्दू के समाचारों में हिन्दी का एक शब्द भी ढूँढे नहीं सुनाई नहीं देता था तो वहीं हिन्दी का कोई भी समाचार ऐसा नहीं था जिसमें उर्दू या अंग्रेजी भाषा की घुसपैठ ना हो. तभी मेरे मन में प्रेरणा जागी कि क्या हम अपनी राजभाषा के संक्रमण की मुक्ति हेतु कुछ नहीं कर सकते।

प्रतिवर्ष 14 सितम्बर आते ही हम हिन्दी बोलने, लिखने, कहने, सुनने, सुनाने इत्यादि के लिए बड़े बड़े प्रचार माध्यमों का प्रयोग तो करते हैं किन्तु दशकों से अपनी स्व–भाषा में हुए व्यापक संक्रमण की मुक्ति हेतु कोई विचार व्यवहार में नहीं ला पाते. ये संक्रमण हिन्दी भाषा में इतना गहराई से पैठ बिठाए हुए है कि हमें कभी पता ही नहीं चलता कि ये शब्द वास्तव में हिन्दी के नहीं हैं. महत्वपूर्ण बात यह भी है कि शब्दों के इस संक्रमणकारी जंजाल से हमारे भाषाई साहित्यकार भी अछूते नहीं रहे. और उन शब्दों को निकल कर आपको यह कहा जाए कि इनका हिन्दी समानार्थी बताओ तो आपको लगेगा कि ये तो हिन्दी के ही हैं. इन घुसपैठिए शब्दों के प्रचार प्रसार में हिंदी समाचार पत्र–पत्रिकाओं, चलचित्रों, इत्यादि साधनों का विशेष स्थान है. हिन्दी के संक्रमण मुक्ति हेतु सबसे पहले उन्हें पहचानना होगा. और उसके बाद उन्हें भगाना होगा. आज मैंने बड़े ध्यान लगा कर 227 शब्दों की एक प्रारम्भिक सूची उन उर्दू के शब्दों की बनाई जो हिन्दी की आत्मा पर सीधा प्रहार कर रहे थे. आओ! उनमें से कतिपय शब्दों पर विचार करते हैं।

विचार आया कि क्या हम अखबार को समाचार पत्र, आजादी को स्वतंत्रता, आबादी को जन–संख्या, आम को सामान्य, आराम को विश्राम, आवाज को ध्वनी, इंतजाम को प्रबंध, इंतजार को प्रतीक्षा, इंसान को मनुष्य, इजाजत को आज्ञा, इवादत तो प्रार्थना, इज्जत

को मान या प्रतिष्ठा, इलाके को क्षेत्र, इलाज को उपचार, इश्तिहार को विज्ञापन, इस्तीफे को त्यागपत्र, ईमानदार को निष्ठावान, उम्र को आयु, एतराज को आपत्ति, एहसान को उपकार, कत्ल को हत्या, अक्ल को बुद्धि, कर्ज को ऋण, कमी को अभाव, करीब को समीप, कसूर को दोष, कातिल को हत्यारा, काबिल को सक्षम, कामयाब को सफल, किताब को पुस्तक, किस्मत को भाग्य, कीमत को मूल्य, कुदरत को प्रकृति, कोशिश को प्रयास, खतरनाक को भयानक, खराब को बुरा, खराबी को बुराई, खारिज को रद्द, खूबसूरत को सुन्दर, गिरफ्तार को बंदी, गुनाह को अपराध, गुलाम को दास, जबरदस्ती को दबाव पूर्वक, जरूर को अवश्य, जल्दी को शीघ्र, जानवर को पशु, जिंदगी को जीवन,ज्यादा को अधिक, झूंठ को मिथ्या, तरीका को ढंग, तस्वीर को चित्र, तारीख को दिनांक, तेज को तीव्र,दुश्मन को शत्रु, धोखा को छल, नतीजे को परिणाम, परेशान को दुखी,फीसदी को प्रतिशत, फैसले को निर्णय, बजह को कारण नहीं बोल सकते. इन सभी 227 शब्दों को मेरे ट्विटर vinod_bansal पर या फेसबुक पर जाकर देख सकते हैं।

अब कुछ उदाहरण अंग्रेजी की घुसपैठ के.. एक व्यक्ति अपनी पत्नी सेः 'आज तो कोई ऐसा डेलिशियस फूड बनाओ कि 'मूड फ्रेश हो जाए'। महोदय आफिस पहुंचे तो बॉस का 'स्टुपिड' टाइप सम्बोधन। हमारी सुबह की चाय 'बेड–टी' तो शौचादिनिवृति 'फ्रेश हो लो' का सम्बोधन बन चुकी। कलेवा (नाश्ता) ब्रेकफास्ट बन गया तो दही 'कर्ड'. अंकुरित 'स्पराउड्स' तो पौष्टिक दलिया 'ओट्स', सुबह की राम राम 'गुड मॉर्निंग' तो शुभरात्रि 'गुड नाईट' में बदल गई। नमस्कार 'हेलो हाय' में तो 'अच्छा चलते हैं' 'बाय' में रूपांतरित हो चुका। माता 'मॉम' तो पिता 'पॉप' हो लिए। चचेरे, ममेरे व फुफेरे सम्बंध सब 'कजन' बन चुके तो, गुरुजी 'सर' में बदल गए तथा गुरुमाता 'मैडम'। भाई 'ब्रदर', बहन 'सिस्टर' तो दोस्त आज 'फ्रेंड' हैं। लेख 'आर्टिकल' तो कविता 'पोएम' निबन्ध 'ऐसए', पत्र 'लेटर', चालक 'ड्राइवर' परिचालक 'कंडक्टर', वैद्य 'डॉक्टर' हंसी 'लाफ्टर', कलम 'पेन' पत्रिका 'मैग्जीन', उधार 'क्रेडिट' तथा भुगतान 'पेमेंट बन गया. कुल मिला कर बात यह है कि हम चाहे हिन्दू हैं, हिंदी हैं, हिंदुस्थानी हैं किन्तु हिन्दी को नहीं बचा पाए!

आओ इस बार के हिन्दी दिवस को हम एक प्रेरणा दिवस के रूप में मनाएं. आज से ही प्रारम्भ करें कि जब भी हम हिन्दी में बोलेंगे, लिखेंगे, कहेंगे, सुनेंगे, गाएंगे, गवाएंगे तो सिर्फ हिन्दी के ही शब्दों का प्रयोग करेंगे और भाषा में हुई घुसपैठ के विरुद्ध एक अभियान छेड़ कर पहले घुसपैठियों को ठीक से पहचानेंगे, विकल्प देखेंगे और उसे पूरी तरह से संक्रमण मुक्त कर स्वभाषा के गौरव को जन जन तक पहुंचाएंगे।

हिन्दी है माथे की बिंदी, इसका मान बढ़ाएंगे,
हम सब भारतवासी मिलकर इसे समृद्ध बनाएंगे।।

हिंदी – गरिमा

हिंदी भाषा गौरवशाली,
है हिंद की इक पहचान।
सम्पोषक है संस्कारों की,
संचित इसमें दिव्य ज्ञान।।१।।

सीधे – सादे पन से यह तो,
शिक्षा देती हमें तमाम ।
यह विशेषता अनुपम इसकी,
सारे जग में इसका नाम ।।२।।

हिंदी भाषा सिखलाती है,
जन– जन को व्यवहार सरल।
इसको पाकर पत्थर दिल भी,
बन जाते हैं सदय, तरल।।३।।

स्वाभिमान को स्वीय संजोये,
दीप्तिमान हिंदी भाषा ।
परचम इसका लहराये जग ,
सफल होय मन की आशा।।४।।

हिंदी भाषा अमर रहे,
हम–करें सदा इसकी पूजा।
भाव "अमित" हो यही हृदय में,
कोई नहीं इस – सा दूजा।।५।।

– ✍ डा सुशील त्यागी "अमित"

डा. सत्यप्रकाश स्वामी (सत्यप्रकाश सरस्वती)

–✍ पं दीनानाथ शास्त्री
चलभाष – ८००४८५८४१३

स्वामी सत्यप्रकाश जी का जन्म सन् 1905 में हुआ था। आपका अध्ययन इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हुआ। आपने रसायन शास्त्र विभाग से Physico chemical studies of inorganic jellies विषय पर डी.एससी. की उपाधि 1932 ई.में प्राप्त की। 1930 ई. से ही रसायन शास्त्र विभाग में अध्यापन आरम्भ किया। 1962 ई. में विभागाध्यक्ष तथा 1967 ई. में सेवानिवृत्त हुये। आपके निर्देशन में 22 विद्यार्थियों ने डी.फिल. की उपाधि प्राप्त की। आपके 150 से अधिक शोध पत्र प्रकाशित हुये। वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा, Founder of Sciences in Ancient India, A Critical study of Brahmagupta and his works, The Bakhshali manuscript (भारतीय अंकगणित की उपलब्ध प्राचीनतम पाण्डुलिपि का गणितीय प्रक्रियाओं के साथ सम्पादन) Coins in Ancient India (मुद्राशास्त्र पर लिखा गया शोधपूर्ण ग्रन्थ) Advance Chemistry of Rare element रासायनिक शिल्प की एकक संक्रियाएं आदि उनके कुछ प्रमुख ग्रन्थ है। जितने विविध विषयों पर स्वामी सत्यप्रकाश जी का लेखन है शायद ही विश्व के किसी व्यक्ति ने इतना लिखा हो। वेद, शुल्बसूत्र, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, अग्निहोत्र, अध्यात्म, धर्म, दर्शन योग, आर्यसमाज, स्वामी दयानन्द, नवजागरण आदि विविध विषयों पर सैकडों ग्रन्थ और लेख स्वामी सत्यप्रकाश जी द्वारा लिखे गये। चारों वेदों का अंग्रेजी में अनुवाद, शुल्बसूत्रों का सम्पादन, The critical study of philosophy of Dayanand और मानक हिन्दी अंग्रेजी कोश का सम्पादन उनके द्वारा किये गये उल्लेखनीय कार्य हैं। आप 1942ई. में स्वतन्त्रता आन्दोलन में जेल भी गये। शतपथ ब्राह्मण पर आपके द्वारा 700पृष्ठों में भूमिका लिखी गई जो ग्रन्थ को समग्रता से समझने में बहुत सहायक है। आपने 17 से अधिक देशों की यात्रायें की। विज्ञान परिषद प्रयाग से हिन्दी मासिक विज्ञान पत्रिका का सम्पादन १० वर्षों तक किया। विश्वविद्यालय में रहते हुये डॉ. सत्यप्रकाश का लेखन मुख्यतः विज्ञान के क्षेत्र में रहा और संन्यास के बाद का लेखन वैदिक साहित्य आर्य समाज और स्वामी दयानन्द विषयक। स्वामी सत्यप्रकाश जी वैज्ञानिक विचारक चिन्तक संन्यासी थे। वे अपने विचारों को लेखों और भाषणों के माध्यम से व्यक्त भी करते थे। उनके विचार कई बार भिन्नता लिये होते और असहमति का कारण बन जाते परन्तु उस विषय में उनका चिन्तन जारी रहता था। स्वामी जी की शताधिक रेडियो वार्तायें तथा पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख हैं जिनका संकलन और प्रकाशन अभी शेष है।स्वामी सत्यप्रकाश जी द्वारा अंग्रेजी में लिखे ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद भी हिन्दी भाषी पाठकों के लिये अत्यन्त उपयोगी होगा। आपका देहान्त 1995 ई. में अपने प्रिय शिष्य पं. दीनानाथ शास्त्री जी के आवास में अमेठी में हुआ। अन्त में रेणापुरकर जी के एक श्लोक से अपनी बात को विराम दूंगा –

वैज्ञानिकोपि निगमागमपारदृश्वा
साहित्यकाव्यकमनीयकलारसज्ञः।
निष्कामनिर्ममनिरीहयतिप्रकाण्डः
सत्यप्रकाश इति नाम गतःसुधन्यः।।

महान् दार्शनिक पण्डित गंगा प्रसाद उपाध्याय

–✍ पं दीनानाथ शास्त्री

पण्डित गंगा प्रसाद उपाध्याय का जन्म 6 सितंबर 1881 को, एटा जिले के नदरई ग्राम में कुंज बिहारी लाल के यहां हुआ। मैट्रिक करने के पश्चात वे बिजनौर में अध्यापक बन गए। अपने स्वाध्याय को जारी रखते हुए 1908 में बी०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की, बाद में उन्होंने अंग्रेजी साहित्य और दर्शन में एम०ए० किया।

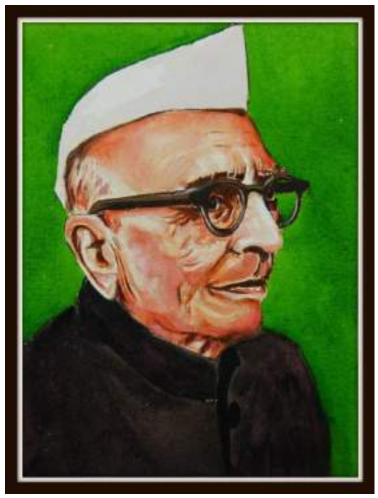

कालान्तर में उन्होंने ''टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज'' इलाहाबाद में अध्यापन कार्य का प्रशिक्षण किया, उन दिनों उस समय के प्रसिद्ध कथाकार प्रेमचंद्र उनके सहपाठी और मित्र थे। प्रेमचंद्र भी अपने सहकारी सेवा काल के प्रारंभिक वर्षों में आर्य समाज से जुड़े रहे और उपाध्याय जी का तो समस्त जीवन ही आर्य समाज के लिए समर्पित हो गया।

उपाध्याय जी 1918 से 1936 तक डीएवी हाई स्कूल प्रयाग के मुख्याध्यापक फिर प्रधानाचार्य रहे। 1941 से 1944 तक उन्होंने आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की अध्यक्षता की। वे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री भी 1946 से 1951 के बीच में रहे ।1950 में उन्हें दक्षिण अफ्रीका में आमंत्रित किया गया, अगले वर्ष 1951 में उन्होंने वर्मा, सिंगापुर तथा थाईलैंड का भ्रमण किया अपने व्याख्यान के द्वारा प्रवासी भारतीयों में वैदिक धर्म का प्रचार किया।

1959 में जब मथुरा में ऋषि दयानन्द की दीक्षा शताब्दी मनाई गई तब उपाध्याय जी की साहित्यिक सेवाओं के उपलक्ष्य में आर्य जगत् की ओर से उनका सार्वजनिक अभिनंदन किया गया। इस अवसर पर उन्हें एक अभिनंदन ग्रंथ भेंट किया गया, तत्कालीन राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद की अध्यक्षता में यह समारोह अत्यंत उत्साहपूर्ण वातावरण में मनाया गया।

''वैदिक कल्चर'', ''फिलासफी आफ दयानन्द'', ''वरशिप'', ''दयानन्द और बुद्ध'' आदि अनेक उत्कृष्ट ग्रंथ है जो अंग्रेजी में लिखे गए। उन्होंने ''आर्य स्मृति'' शीर्षक से धर्मशास्त्रीय और नैतिक विषयों पर श्लोकबद्ध ग्रंथ लिखा। दो खण्डों में आर्योदय शीर्षक से सुंदर संस्कृत काव्य की रचना की, इसमें भारत के क्रमबद्ध इतिहास के विवेचन के साथ ऋषि दयानन्द के जीवन को श्लोकबद्ध किया गया है।

उपाध्याय जी ने 120 से अधिक ट्रैक्ट लिखकर वैदिक धर्म के प्रचार में अपना बहुमूल्य योगदान किया। ये ट्रैक्ट इतने लोकप्रिय हुए कि अंग्रेजी, उर्दू, गुजराती, मराठी, बांग्ला आदि अनेक भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हुए। एक गणना के अनुसार यह 40 लाख से अधिक संख्या में छपे थे।

उर्दू में इस्लाम पर लिखा गया उनका ग्रंथ ''मसाबीहुल इस्लाम'' को पर्याप्त लोकप्रियता मिली। ''विधवा विवाह चंद्रिका'', ''हम क्या खाएं– घास या मांस ? ''आदि स्फुट विषयों पर लिखी उनकी कृतियां भी अत्यंत लोकप्रिय हुईं। उपाध्याय जी की आत्मकथा ''जीवन चक्र'' शीर्षक से 1954 में प्रकाशित हुई जिसमें लेखक ने अपने अनुभवों को व्यक्त किया है।

यह महान विभूति 29 अगस्त 1968 को 87 वर्ष की आयु में हम लोगों से विदा लेकर अपनी चिरंतन यात्रा को चली गयी।

'उपाध्याय जी बिजनौर आर्यसमाज मन्दिर में रहे यहीं आर्य समाज में ही इनके दो पुत्रों का जन्म हुआ।चारों वेद के एक मात्र अंग्रेजी अनुवादक महान् वैज्ञानिक स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी इनके ज्येष्ठ पुत्र का जन्म 24–08–1905ईको आर्यसमाज बीजनौर में ही हुआ। उपाध्याय जी ने हिन्दी, संस्कृत,अंग्रेजी,उर्दू में अनेक ग्रन्थ लिखे।सर्वप्रथम हिन्दी का व्याकरण लिखा। ''इस्लाम के दीपक'' भी बहुत प्रसिद्ध रचना है। सत्यार्थप्रकाश का अंग्रेजी अनुवाद Light of Truth भी अद्वितीय है।*****

विश्व शाकाहार दिवस पर विशेष

मनुष्य मांसाहारी या शाकाहारी ?

–✍ डॉ. भूपसिंह,
भिवानी (हरियाणा)

हवा–पानी–भोजन सभी जीवधारियों के जीवन आधार हैं। हवा–पानी साफ हों प्रदूषित न हों, यह भी सर्वमान्य है। मनुष्य को छोड़ कर शेष सभी शरीरधारी अपने भोजन के बारे में भी स्पष्ट हैं उनका भोजन क्या है? यह कितनी बड़ी विड़म्बना है कि सबसे बुद्धिमान् शरीरधारी मनुष्य अपने भोजन के बारे में स्पष्ट नहीं है। मैं अपने मनुष्य बन्धुओं से यह बात कहते हुए क्षमा चाहूँगा कि भोजन के निर्णय में मनुष्य की स्थिति एक गधे से भी नीचे है। मनुष्य को भोजन के बारे में बताने वाले डॉक्टर, वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री, धर्मगुरु दोगली बातें करते हैं। स्पष्ट निर्णय किससे लें? भोजन के बारे में स्पष्ट निर्णय हमें सिद्धान्त से ही मिल सकता है, क्योंकि सिद्धान्त सर्वोपरी होता है। हम यह निर्णय करें कि मनुष्य का भोजन क्या है?, कुछ आधारभूत बातों के आधार पर करेंगे। ये आधारभूत बातें इस प्रकार हैं –

1. किसी मशीन के बारे में जानकारी, प्रयोग करने वाले से बनाने वाले को अधिक होती है।

2. मशीन का ईंधन और शरीर का भोजन उसकी बनावट के अनुसार निश्चित होता है।

3. उपयुक्त (बनावट के अनुसार) ईंधन वा भोजन से मशीन वा शरीर अच्छा काम करेंगे व देर तक कार्य करेंगे अन्यथा ईंधन या भोजन से कम काम करेंगे और शीघ्र खराब हो जायेंगे।

4. ईंधन या भोजन वह पदार्थ है, जिससे मशीन कार्य करे और शरीर जीवित रहे। जिस पदार्थ को शरीर में भोजन रूप में डाला जाये और शरीर जीवित न रहे, वह भोजन नहीं हो सकता।

5. सभी शरीर (आस्तिकों के लिए) ईश्वर ने बनाए या (नास्तिकों के लिए) प्रकृति ने बनाये। एक भी शरीर किसी डॉक्टर, वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री या धर्मगुरु ने नहीं बनाया।6. हम सृष्टि में अपने चारों ओर दो प्रकार के शरीर देख रहे हैं – मांसाहारी और शाकाहारी।

यहाँ हम 1, 2, 5 और 6 के आधार पर निर्णय करेंगे कि मनुष्य का भोजन मांसाहार है या शाकाहार है?

सभी शरीर ईश्वर या प्रकृति ने बनाये, ईश्वर या प्रकृति की जानकारी मनुष्य से अधिक है और भोजन बनावट के हिसाब से होता है। हमारे सामने दो प्रकार के शरीर मांसाहारी (शेर, चीता, तेंदूआ, भेड़िया आदि) और शाकाहारी (गाय, बकरी, घोड़ा, हाथी, ऊँट आदि) उपस्थित हैं, तो सबसे आधारभूत बात है कि भोजन शरीर की बनावट के हिसाब से शरीर बनाने वाले ईश्वर या प्रकृति ने निश्चित किया है और ईश्वर या प्रकृति की बात मनुष्य के मुकाबले ज्यादा ठीक होगी, इस आधार का प्रयोग करके हम मनुष्य का भोजन निश्चित करेंगे। उस निर्णय के लिये हम शाकाहारी और मांसाहारी के शरीरों की बनावट की तुलना करते हैं और देखते हैं कि मनुष्य शरीर की बनावट किससे मेल खाती है? मनुष्य शरीर की रचना शाकाहारी शरीरों जैसी है, तो मनुष्य का भोजन शाकाहार और यदि रचना मांसाहारी शरीरों से मेल खाती है, तो मनुष्य का भोजन मांसाहार होगा। यह अन्तिम निर्णय होगा और हमें किसी धर्मगुरु, वैज्ञानिक या डॉक्टर से पूछने की आवश्यकता नहीं हैं, क्योंकि ईश्वर या प्रकृति के मुकाबले इनकी कोई औकात नहीं होती और वैसे भी मनुष्य का निष्पक्ष होना बड़ा मुश्किल होता है। निम्न. तालिका में मांसाहारी–शाकाहारी शरीरों की रचना की तुलनात्मक जानकारी दी जा रही है –

1. ***मांसाहारी*** – आँखें गोल होती हैं, अंधेरे में देख सकती हैं, अंधेरे में चमकती हैं और जन्म के 5–6 दिन बाद खुलती हैं।

   शाकाहारी – आँखे लम्बी होती हैं, अंधेरे में चमकती नहीं और अंधेरे में देख नहीं सकती और जन्म के साथ ही खुलती हैं।

2. ***मांसाहारी*** – घ्राण शक्ति (सूंघने की शक्ति) बहुत अधिक होती है।

   शाकाहारी – घ्राण शक्ति मांसाहारियों से बहुत कम होती है।

3. ***मांसाहारी*** – बहुत अधिक आवृत्ति वाली आवाज को सुन लेते हैं।

   शाकाहारी – बहुत अधिक आवृत्ति वाली आवाज को

नहीं सुन पाते हैं।

4. ***मांसाहारी*** – दांत नुकीले होते हैं। सारे मुँह में दांत ही होते हैं, दाढ़ नहीं होती हैं और दांत एक बार ही आते हैं।
   शाकाहारी – दांत और दाढ़ दोनों होते हैं, चपटे होते हैं और एक बार गिर कर दोबारा आते हैं।
5. ***मांसाहारी*** – ये मांस को फाड़ कर निगलते हैं, तो इनका जबड़ा केवल ऊपर–नीचे चलता है।
   शाकाहारी – ये भोजन को पीसते हैं, तो इनका जबड़ा ऊपर–नीचे और बायें–दायें चलता है।
6. ***मांसाहारी*** – मांस खाते समय बार–बार मुँह को खोलते व बन्द करते हैं।
   शाकाहारी – भोजन करते समय एक बार भोजन मुँह में लेने के बाद निगलने तक मुँह बन्द रखते हैं।
7. ***मांसाहारी*** – जीभ आगे से चपटी, व पतली होती है और आगे से चौड़ी होती है।
   शाकाहारी – जीभ आगे से चौड़ाई में कम व गोलाईदार होती है।
8. **मांसाहारी** – जीभ पर टैस्ट बड्ज (Teste Buids), जिनकी सहायता से स्वाद की पहचान की जाती है, संख्या में काफी कम होते हैं (500 – 2000)
   शाकाहारी – जीभ पर टैस्ट बड्ज की संख्या बहुत अधिक होती है (20,000 – 30,000) मनुष्य की जीभ पर यह संख्या (24,000 – 25,000) तक होती है।
9. ***मांसाहारी*** – मुँह की लार अम्लीय होती है। (acidic)
   शाकाहारी – मुँह की लार क्षारीय होती है। (alkaline)
10. ***मांसाहारी*** – पेट की बनावट एक कक्षीय होती है।
    शाकाहारी – पेट की बनावट बहुकक्षीय होती है। मनुष्य का पेट दो कक्षीय होता है।
11. ***मांसाहारी*** – पेट के पाचक रस बहुत तेज (सान्द्र) होते हैं। शाकारियों के पाचक रसों से 12–15 गुणा तेज होते हैं।
    शाकाहारी – शाकाहारियों के पेट के पाचक रस मांसाहारियों के मुकाबले बहुत कम तेज होते हैं। मनुष्य के पेट के पाचक रसों की सान्द्रता शाकाहारियों वाली होती है।
12. ***मांसाहारी*** – पाचन संस्थान (मुँह से गुदा तक) की लम्बाई कम होती है। आमतौर पर शरीर लम्बाई का 2.5 – 3 गुणा होती है।
    शाकाहारी – पाचन संस्थान की लम्बाई अधिक होती है। प्रायः शरीर की लम्बाई का 5–6 गुणा होती है।
13. ***मांसाहारी*** – छोटी आंत व बड़ी आंत की लम्बाई–चौड़ाई में अधिक अन्तर नहीं होता।
    शाकाहारी – छोटी आंत चौड़ाई में काफी कम और लम्बाई में बड़ी आंत से काफी ज्यादा लम्बी होती है।
14. ***मांसाहारी*** – इनमें कार्बोहाईड्रेट नहीं होता, इस कारण मांसाहारियों की आंतों में किण्वन बैक्टीरिया (Fermentation bacteria) नहीं होते हैं।
    शाकाहारी – इनकी आंतों में किण्वन बैक्टीरिया (Fermentation bacteria) होते हैं, जो कार्बोहाइड्रेट के पाचन में सहायक होते हैं।
15. ***मांसाहारी*** – आंते पाईपनुमा होती है अर्थात् अन्दर से सपाट होती हैं।
    शाकाहारी – आंतों में उभार व गड्ढे (grooves) अर्थात् अन्दर की बनावट चूड़ीदार होती है।
16. ***मांसाहारी*** – इनका लीवर वसा और प्रोटीन को पचाने वाला पाचक रस अधिक छोड़ता है। पित को स्टोर करता है। आकार में बड़ा होता है।
    शाकाहारी – इनके लीवर के पाचक रस में वसा को पचाने वाले पाचक रस की न्यूनता होती है। पित को छोड़ता है। तुलनात्मक आधार में छोटा होता है।
17. ***मांसाहारी*** – पैंक्रियाज (अग्नाशय) कम मात्रा में एन्जाईम छोड़ता है।
    शाकाहारी – मांसाहारियों के मुकाबले अधिक मात्रा में एन्जाईम छोड़ता है।
18. ***मांसाहारी*** – खून की प्रकृति अम्लीय (acidic) होती है।
    शाकाहारी – खून की प्रकृति क्षारीय (alkaline) होती है।
19. ***मांसाहारी*** – खून (blood) के लिपो प्रोटीन एक प्रकार के हैं, जो शाकाहारियों से भिन्न होते हैं।
    शाकाहारी – मनुष्य के खून के लिपो प्रोटीन (Lipo & Protein) शाकाहारियों से मेल खाते हैं।
20. ***मांसाहारी*** – प्रोटीन के पाचन से काफी मात्रा में यूरिया व यूरिक अम्ल बनता है, तो खून से काफी

मात्रा में यूरिया आदि को हटाने के लिये बड़े आकार के गुर्दे (Kidney) होते हैं।

शाकाहारी – इनके गुर्दे मांसाहारियों की तुलना में छोटे होते हैं।

21. *मांसाहारी* – इनमें (रेक्टम) गुदा के ऊपर का भाग नहीं होता है।

शाकाहारी – इनमें रेक्टम होता है।

22. मांसाहारी – इनकी रीढ़ की बनावट ऐसी होती है कि पीठ पर भार नहीं ढो सकते।

शाकाहारी – इनकी पीठ पर भार ढो सकते हैं।

23. *मांसाहारी* – इनके नाखून आगे से नुकीले, गोल और लम्बे होते हैं।

शाकाहारी – इनके नाखून चपटे और छोटे होते हैं।

24. *मांसाहारी* – ये तरल पदार्थ को चाट कर पीते हैं।

शाकाहारी – ये तरल पदार्थ को घूंट भर कर पीते हैं।

25. *मांसाहारी* – इनको पसीना नहीं आता है।

शाकाहारी – इनको पसीना आता है।

26. *मांसाहारी* – इनके प्रसव के समय (बच्चे पैदा करने में लगा समय) कम होता है। प्रायः 3–6 महिने।

शाकाहारी – इनके प्रसव का समय मांसाहारियों से अधिक होता है। प्रायः 6 महिने से 18 महिने।

27. *मांसाहारी* – ये पानी कम पीते हैं।

शाकाहारी – ये पानी अपेक्षाकृत ज्यादा पीते हैं।

28. *मांसाहारी* – इनके श्वांस की रफ्तार तेज होती है।

शाकाहारी – इनके श्वांस की रफ्तार कम होती है, आयु अधिक होती है।

29. *मांसाहारी* – थकने पर व गर्मी में मुँह खोल कर जीभ निकाल कर हाँफते हैं।

शाकाहारी – मुँह खोलकर नहीं हाँफते और गर्मी में जीभ बाहर नहीं निकालते।

30. *मांसाहारी* – प्रायः दिन में सोते हैं, रात को जागते व घूमते–फिरते हैं।

शाकाहारी – रात को सोते हैं, दिन में सक्रिय होते हैं।

31. *मांसाहारी* – क्रूर होते हैं, आवश्यकता पड़ने पर अपने बच्चे को भी मार कर खा सकते हैं।

शाकाहारी – अपने बच्चे को नहीं मारते और बच्चे के प्रति हिंसक नहीं होते।

32. *मांसाहारी* – दूसरे जानवर को डराने के लिए गुर्राते हैं।

शाकाहारी – दूसरे पशु को डराने के लिए गुर्राते नहीं।

33. *मांसाहारी* – इनके ब्लड में रिस्पटरों की संख्या अधिक होती है, जो ब्लड में कोलेस्ट्रॉल को नियन्त्रित करते हैं।

शाकाहारी – इनके ब्लड में रिस्पटरों की संख्या कम होती है। मनुष्य के ब्लड में भी संख्या कम होती है।

34. *मांसाहारी* – ये किसी पशु को मारकर उसका मांस कच्चा ही खा जाते हैं।

शाकाहारी – मनुष्य जानवर को मारकर उसका कच्चा मांस नहीं खाता।

35. *मांसाहारी* – इनके मल–मूत्र में दुर्गन्ध होती है।

शाकाहारी – इनके मल–मूत्र में दुर्गन्ध नहीं होती (मनुष्य यदि शाकाहारी है और उसका पाचन स्वस्थ है, तो मनुष्य के मल–मूत्र में भी बहुत कम दुर्गन्ध होती है।)

36. *मांसाहारी* – इनके पाचन संस्थान में पाचन के समय ऊर्जा प्राप्त करने के लिये अलग प्रकार के प्रोटीन उपयोग में लाये जाते हैं, जो शाकाहारियों से भिन्न हैं।

शाकाहारी – इनके ऊर्जा प्राप्ति के लिये भिन्न प्रोटीन प्रयोग होते हैं।

37. *मांसाहारी* – इनके पाचन संस्थान, जो एन्जाइम बनाते हैं, वे मांस का ही पाचन करते हैं।

शाकाहारी – इनके पाचन संस्थान, जो एन्जाइम बनाते हैं, वे केवल वनस्पतिजन्य पदार्थों को ही पचाते हैं।

38. *मांसाहारी* – इनके शरीर का तापमान कम होता है, क्योंकि मांसाहारियों का BMR (Basic Metabolic Rate) शाकाहारियों से कम होता है।

शाकाहारी – मनुष्य के शरीर का तापमान शाकाहारियों के आस–पास होता है।

39. *मांसाहारी* – दो बर्तन लें, एक में मांस रख दें और दूसरे में शाकाहार रख दें, तो मांसाहारी जानवर मांस को चुनेगा।

शाकाहारी – मनुष्य का बच्चा शाकाहार को चुनेगा।

उपर्युक्त तथ्यों के अनुसार मनुष्य शरीर की बनावट बिना किसी अपवाद के शत्–प्रतिशत् शाकाहारी शरीरों की बनावट से मेल खाती है और भोजन को बनावट के

अनुसार निश्चित किया जाता है, तो मनुष्य का भोजन शाकाहार है, मांसाहार कतई नहीं। हमें निश्चिन्त होकर शाकाहार करना चाहिये और मांसाहार से होने वाली अनेक प्रकार की हानियों से बचना चाहिये।

शाकाहार में मानव का कल्याण है और मांसाहार विनाशकारी है। प्राकृतिक सिद्धान्त की उपेक्षा करके होने वाले विनाश से बचने का कोई मार्ग नहीं है। ****

सुनो द्रोपदी शस्त्र उठालो, अब गोविंद न आयंगे

छोडो मेहँदी खडक संभालो
खुद ही अपना चीर बचा लो
द्यूत बिछाये बैठे शकुनि,
मस्तक सब बिक जायेंगे
सुनो द्रोपदी शस्त्र उठालो,
अब गोविंद न आयेंगे।

कब तक आस लगाओगी तुम,
बिके हुए अखबारों से,
कैसी रक्षा मांग रही हो
दुशासन दरबारों से।

स्वयं जो लज्जा हीन पड़े हैं
वे क्या लाज बचायेंगे
सुनो द्रोपदी शस्त्र उठालो
अब गोविंद न आयंगे।

कल तक केवल अँधा राजा,
अब गूंगा बहरा भी है
होठ सी दिए हैं जनता के,
कानों पर पहरा भी है।

तुम ही कहो ये अश्रु तुम्हारे,
किसको क्या समझायेंगे?
सुनो द्रोपदी शस्त्र उठालो,
अब गोविंद न आयंगे।

– ✍पुष्यमित्र उपाध्याय

बेटियों का करें सम्मान...

बेटियों को उड़ने के लिए दें अब खुला आसमान,
उन्हें बनाने दो खुद एक अलग अनूठी पहचान।
कब तलक पिता भाई के सहारे ही चलती रहेंगी,
बेटियों को भी लगाने दो लक्ष्य पर सही निशान।।

हर क्षेत्र में बेटियाँ सितारा बन अब चमक रहीं हैं,
साइना, सिंधू, मैरीकॉम जैसी बन निखर रहीं हैं।
कल्पना चावला बनकर नील गगन में उड़ने दो,
रणक्षेत्र में भी कौशल से चमक बिखेर रहीं हैं।।

घर में बेटियों के रहने से आँगन खूब महकता है,
बेटियों से ही घर का हर कोना कोना चहकता है।
बेटियाँ ही बनती हैं माँ बहन बहुएं हमारे घर की,
बेटी से पिता के कन्यादान का सपना सजता है।।

बेटों की तरह ही बेटियों की करनी चाहिए परवाह,
बेटियों से भी पूछनी चाहिए उनकी इच्छा व चाह।
बेटा बेटी में विभेद अब अवश्य खत्म होना चाहिए,
बेटियों को सुख सुविधा देकर बनाने दो अब राह।।

कुछ नर भेड़िए करते हैं बहन बेटियों का अपमान,
वो अपने घर में भी न देते होंगे बेटी को सम्मान।
ऐसे मानसिकता वालों को सरे आम मारो गोली,
जिससे ऐसे दानव भी सीखें बेटी का करना मान।।

अपनी उन्नति से बेटियाँ कर रही हैं अब चमत्कार,
शिक्षा खेल साहित्य में पा रहीं हैं बेटियाँ पुरस्कार।
देश ही नहीं वरन विदेशों में भी मचा रहीं हैं धूम,
पुरुषों के समान ही बेटियाँ अब करती ललकार।।

– ✍ लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
मोबाइल नं – ७५५०९२